पर्यावरण और हम

डॉ० विजय अग्रवाल



परिमल प्रकाशन
१७, एम० आई० जी०, बाघम्बरी आवास योजना
अल्लापुर, इलाहाबाद-२११००६ फोन : ५२७७१

प्रकाशक
परिमल प्रकाशन
१७, एम० आई० जी, बाघम्बरी आवास योजना
अल्लापुर, इलाहाबाद-२११ ००६

□

मुद्रक
भार्गव मुद्रण केन्द्र
४/३, बाई का बाग, इलाहाबाद-२११ ००३

□

भीतरी चित्र : के० एम० लाल श्रीवास्तव
आवरण : इम्पैक्ट, इलाहाबाद-२११ ००१

□

प्रथम संस्करण
१६८६ ईसवी

□

मूल्य : १५ रुपये

अनुक्रम

□

• • •

भूमिका

हम भारतीयो को हमेशा से ही अपनी जलवायु तथा अमृत तुल्य गगाजल पर गर्व रहा है। गगा को मोक्षदायिनी कहा गया है लेकिन उसका वर्तमान स्वरूप कितना बिगड चुका है इसकी कल्पना सामान्य व्यक्ति नही कर सकता।

कानपुर, वाराणसी तथा बगाल मे गगा का दूषित पानी सेवन के योग्य भी नही रह गया। पानी की स्वच्छता धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है। गगा की निर्मल जलधारा विषाणुओ तथा जीवाणुओ का पर्याय बन रही है। यमुना का सलोना रूप बिगडता जा रहा है। इन सब तथ्यों से हम कोसो दूर हैं। सिर्फ गगा ही नही देश-विदेश की तमाम नदियो जल स्रोतो—कुआँ तालाब और झीलो का पानी गदला होता जा रहा है। कही पीलिया फैल रहा है तो कही हैजा।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से रेडियोधर्मी तत्वो की वजह से वायु मडल मे आणविक प्रदूषण फैल रहा है। दर्जनो एटमबमो का विस्फोट हानिकारक किरणो का उत्सर्जन करते हैं। त्वचा के कैंसर के लिए इन किरणो को ही काफी हद तक जिम्मेदार माना जा रहा है। इसी तरह कारखानो की जहरीली गैसो कूडा-कचरो परिवहन से उत्पन्न धुआँ तथा धूल की कणिकाओ से भी हमारा पर्यावरण बुरी तरह प्रभावित होता जा रहा है।

तेज शोर को मनुष्य की मानसिक व्याधि का एक प्रमुख कारण माना जा रहा है। वैज्ञानिको का कहना है कि सिर दर्द, मानसिक तनाव तथा रक्तचाप की बीमारियो के लिए भी ध्वनि का प्रदूषण ही जिम्मेदार है।

लगातार मनुष्य द्वारा अपने हित के लिए प्रकृति के दोहन के फल-स्वरूप जो प्राकृतिक असंतुलन की स्थिति पैदा हो गयी है वह सम्पूर्ण सृष्टि को किस हद तक प्रभावित कर रही है ? हम इससे अनभिज्ञ ही हैं। पेड़ों-जंगलों के सफाये से बाढ़ की भयंकर समस्या को हमने स्वत. जन्म दिया है। हम इसके लिए क्या किसी और को दोषी ठहरा सकते हैं। शायद नहीं ! हमने खुद अपने पर्यावरण को प्रदूषित किया है, यह एक ध्रुव सत्य है। जनसंख्या में बढ़ोत्तरी के साथ-साथ हमारी आवश्यकताएँ बढ़ती गयीं और इन आवश्यकताओं की पूर्ति हमने प्रकृति के अंधाधुंध दोहन से किया।

वन्य जीवन को भी मनुष्य ने ही प्रभावित किया। तमाम दुर्लभ वन्य जातियों का लोप, मनुष्य की ही वजह से हो गया।

इस सब की जानकारी के उद्देश्य से ही इस पुस्तक की रचना की गयी है। हम अपने पर्यावरण के विषय में कुछ खास नहीं जानते। हमें इस बात का पता ही नहीं कि वायुमंडल में कार्बन डाई आक्साइड यदि बढ़ गयी तो कौन सा पहाड़ टूट पड़ेगा। पृथ्वी का ताप बढ़ता है तो उससे हमें क्या लेना-देना। मनुष्य की यह नासमझी ही प्राकृतिक विनाश का प्रमुख कारण बन जायेगी।

वैज्ञानिकों ने पर्यावरण के बिगड़ते स्वरूप पर गहन अध्ययन किया है तथा चौंका देने वाले तथ्य बताये हैं। पर्यावरण का कुप्रभाव हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए अभिशाप है। इस पुस्तक के माध्यम से विभिन्न पहलुओं पर किये जा रहे शोधकार्यों का संक्षेप में कुछ विवरण देने का प्रयास किया गया है।

वस्तुतः हिन्दी में पर्यावरण तथा उसके प्रदूषण पर बहुत कम पुस्तकें मौजूद हैं जो प्रकृति का सांगोपांग अध्ययन कराती हों। संभवतः यह पुस्तक आधुनिक वैज्ञानिक निष्कर्षों की जानकारी दे सकेगी। इस पुस्तक में अंटार्कटिका पर भी एक संक्षिप्त जानकारी दी गयी है।

पर्यावरण सुधार के लिए भारत सरकार तथा विश्व स्तर पर क्या-क्या हो रहा है, इस पर भी चर्चा की गयी है।

इस पुस्तक के लिखने का श्रेय मेरे बुजुर्ग मित्र श्री बालकृष्ण पाण्डेय को जाता है जिन्होने पिछले दो वर्षों से मुझे इस कार्य के लिए लगातार प्रेरित किया।

मैं अवधेश प्रताप सिंह, विश्वविद्यालय रीवा मध्य प्रदेश के कुल पति प्रोफेसर एच० एल० निगम का आभारी हूँ जिन्होने हर स्तर पर पुस्तक की पाडुलिपि तैयार कराने मे मुझे सुझाव दिये तथा वैज्ञानिक जानकारियाँ करायी। उसके अतिरिक्त सर्व श्री प्रो० उमाशकर श्रीवास्तव, प्रो० एल० एम० श्रीवास्तव, प्रो० कृष्णा जी डॉ० शिव प्रकाश, डॉ० ओम प्रकाश श्री युद्धवीर चड्ढा, डॉ० मुकुन्ददेव शर्मा (अब स्वर्गीय) ने भी लेखक को समय-समय पर हर सभव सहायता की है जिसके लिए मैं इन सबका कृतज्ञ हूँ।

मुझे सक्रिय लेखन की ओर मेरे पूज्य गुरु डॉ० ए० के० श्रीवास्तव तथा भाभी श्रीमती हेमलता श्रीवास्तव ने प्रेरित ही नही किया वरन् उत्साहित भी किया, मैं उन्हें भी इस अवसर पर अपना प्रणाम निवेदित करना चाहता हूँ।

मुझे श्री शिवकुमार जी सहाय को किन शब्दो मे धन्यवाद देना चाहिए नही जानता, लेकिन उन्होने जिस तरह का स्नेह मुझे दिया है उसे मैं अपनी उपलब्धि मानता हूँ। पुस्तक का प्रकाशन उन्ही की वजह से सभव हो सका। इसके अतिरिक्त मैं अपने गुरुजनो, मित्रो तथा शुभचिन्तको के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहता हूँ जिन्होने कही न कही मुझे मार्ग निर्देशन अवश्य दिया है। पुस्तक कितनी उपयोगी होगी, यह तो पाठक ही बता सकेंगे लेकिन इसको और अधिक ज्ञानवर्धक बनाने के लिए दिये गये सुझावो का स्वागत है।

—विजय अग्रवाल

प्रदूषण : एक दृष्टि

पृथ्वी मे मौजूद हर जीवित प्राणी को हवा की जरूरत होती है। हवा यानी साँस लेना हर व्यक्ति, पशु-पक्षी यहाँ तक कि पौधो के लिए भी आवश्यक है। जीने के लिए पानी की भी आवश्यकता होती है। रहने के लिए जमीन चाहिए, जलाने को इंधन चाहिए। यानी कुल मिलाकर हवा, पानी, मिट्टी, पेड़ पौधे हमारी महत्वपूर्ण आवश्यकताएं हैं। मोटे तौर पर हम जहाँ रहते हैं, जहाँ सास लेते हैं पानी पीते हैं अर्थात् जिससे हम घिरे हैं, वह वातावरण ही पर्यावरण कहलाता है।

बचपन से ही हमे आकाशलोक, पाताललोक तथा मृत्युलोक की कहानियाँ सुनायी जाती हैं। वैज्ञानिको ने भी इसी तरह पर्यावरण को आकाश-पाताल तथा पृथ्वी की ऊपरी सतह मे बाँटा है।

वैज्ञानिक शब्दावली के अनुसार वातावरण का वह भाग जो चट्टानो तथा रेत से भरा है लीथोस्फीयर या भूमडल कहलाता है।

इसी तरह वातावरण का वह भाग जिसमे पानी है वह हाइड्रोस्फीयर या जलमडल से जाना जाता है और भूमडल तथा जलमंडल के ऊपर का तकरीबन तीन सौ किलोमीटर का वातावरण जिसमे तरह-तरह की गैसें, पानी की भाप मौजूद है वायुमंडल या 'ऐटमास्फीयर' कहलाता है।

पृथ्वी के ऊपरी तथा भीतरी भाग मे जहाँ जीवन पाया जाता है उसे जीवमडल के नाम से जाना जाता है। पृथ्वी की बाहरी सतह से लगभग ८ किलोमीटर ऊपर तथा अदर के क्षेत्र मे तरह तरह के जीवधारी रहते है। पृथ्वी की ऊपरी सतह मे पशु पक्षी तथा मनुष्य

दिखायी देते हैं, तो नीचे की सतह में अन्दर की ओर तरह तरह के जीव-जन्तु, मछलियाँ, घड़ियाल। और नीचे की तरफ जायें तो छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े रहते हैं। इसी तरह वायुमंडल के ऊपरी हिस्से में भी बहुत से सूक्ष्म कीट-पतंगे या जीवाणु मिलते हैं।

जहाँ पर हम प्राणी निवास करते हैं, उठते-बैठते, चलते-फिरते हैं, जहाँ पेड़-पौधे पाये जाते हैं वही जीवमण्डल है। जीवमण्डल में सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव भी रहते है तथा भारी-भरकम देह वाले पशु भी। सूक्ष्म वनस्पति भी पायी जाती है तथा बड़े-बड़े वृक्ष भी। वर्षों से वैज्ञानिक पृथ्वी की ही तरह के दूसरे जीव लोक को खोज कर रहे हैं। चन्द्रमा, शुक्र तथा मंगल तक का चक्कर उपग्रहों से लगाया जा रहा है लेकिन अब तक की खोजों से यही निष्कर्ष निकाला गया है कि 'जीव मंडल' नाम की चीज सिर्फ हमें ही मिली है। इस जीवमण्डल में लगभग १० लाख छोटे-बड़े जीव-जन्तु तथा ३ लाख प्रकार की वनस्पतियो की जातियाँ-प्रजातियाँ मौजूद हैं।

पृथ्वी मे पाये जाने वाले जीवों की तमाम नयी प्रजातियों की खोजे भी हो रही हैं और तमाम खोजों के बाद यह भी पता चला है कि बहुत सारे जीवों की जातियाँ विलुप्त भी हो गयी हैं। इन जातियो में एक बहुत बड़ी जाति डायनोसोरों की पता चली है जो अब से करीब ८ करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी पर मौजूद थे। इन जानवरों का डील-डौल हाथी से भी कई गुना ज्यादा था।

वैज्ञानिकों की धारणा है कि वे वातावरण में परिवर्तनों की वजह से नष्ट हो गये।

प्राकृतिक वातावरण मे सदैव एक सतुलन बना रहता है लेकिन जैसे ही सतुलन बिगड़ा पर्यावरण दूषित हो जाता है और धीरे-धीरे वह जीवन के प्रत्येक भाग को प्रभावित करने लगता है।

प्राचीन युग में जब कि आधुनिक सभ्यता से आदमी कोसो दूर

था, वह जीवन यापन के लिए प्रकृति पर निर्भर करता था। वह पेडो के पत्ते, जड़, फल खाता था। धीरे-धीरे जानवरो को मार कर वह उसका माँस खाने लगा तथा उसकी खाल से वस्त्र का काम लेने लगा। लेकिन धीरे-धीरे विकास के साथ साथ हमने प्रकृति का दुरुपयोग करना शुरू किया। बेतहाशा जानवर मारे जाने लगे, जगल काट दिये गये। वातावरण का सतुलन धीरे-धीरे बिगडने लगा और आज हमें अपने पुराने युगो की याद आ रही है जब कि ईंधन की प्राकृतिक सम्पदा धीरे-धीरे नष्ट प्राय हो गयी है।

जैसे-जैसे हम विकास के नाम पर आगे बढते गये हम मशीनो पर निर्भर हो गये। इस मशीनीकरण ने प्रकृति के सतुलन को सर्वाधिक प्रभावित किया है। विभिन्न कल-कारखानो से निकली विषाक्त गैस तथा उत्प्रवाह (वेस्ट मैटीरियल) वायुमडल तथा नदियो को प्रदूषित कर रहे हैं।

• • •

हवा तथा पानी के सेवन की मजबूरी के कारण इन प्रदूषित आवश्यकताओं से प्राणी दिन-प्रतिदिन बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। नदियो मे धीरे धीरे जहर घुलता जा रहा है तो हवा मे भी पहले जैसी ताजगी नही रही। कदम-कदम पर जहर उगलने वाली मशीनो ने पूरा का पूरा वातावरण विषाक्त सा कर दिया है।

हवा को ताजगी प्रदान करने वाले वृक्ष भी प्रदूषण की भयावहता के शिकार हो गये हैं। बडे बडे पेड जहरीले वातावरण के कारण झुलस रहे हैं। जहरीली वायु प्रदूषित जल तथा मिट्टी की उपजाऊ क्षमता कम होने के कारण वनस्पतियो का ह्रास होता जा रहा है। प्रदूषण के ही कारण हर वर्ष न मालूम कितने बच्चे असमय ही मौत की गोद मे चले जाते हैं।

आम आदमी को दिल की बीमारी होती जा रही है। छोटे-छोटे बच्चे भी अस्थमा, दमा, साँस के रोगो से ग्रस्त हो गये हैं।

अस्पतालों में प्रतिदिन हजारों व्यक्ति हैजे, चेचक, कैंसर, टी० बी० से ग्रस्त होकर आते हैं। आँख, कान की बीमारी आम बात हो गयी है। जो सम्पन्न हैं, वे भी बीमारी से मुक्त नही हैं, यह प्रदूषित जलवायु मानव तथा प्रकृति दोनों को विनाश की ओर ले जा रही है। आखिर प्रदूषण की भयावहता का मूल कारण क्या है ? वे कौन सी स्थितियां हैं जो हमारे वायुमंडल को लगातार विषाक्त कर रही हैं। प्रकृति के साथ खिलवाड़ का यह क्रम कैसे शुरू हुआ ? इसके भयकर विनाशकारी परिणामों से क्या हम सचेष्ट हैं ? ये तमाम ऐसे सवाल हैं जिनका मस्तिष्क में उठना स्वाभाविक है। आइये हम अपनी प्रकृति, पर्यावरण तथा उसके विभिन्न घटकों पर एक दृष्टि डालें।



अंटार्कटिका : प्रदूषण का संदर्भ बिन्दु

प्रकृति के परिवर्तनशील होने का सबसे बड़ा उदाहरण अंटार्कटिका है। शोध से पता चलता है कि लगभग एक सौ चालीस लाख वर्ग किलोमीटर का यह बर्फीला महाद्वीप लगभग ५ करोड़ वर्ष पूर्व हिम-युग की चपेट मे आया था। इस दुर्घटना के पूर्व अंटार्कटिका मे जीव-जन्तु पेड़, पौधे, जंगल, पानी, हवा सब कुछ था। लेकिन अचानक वे सब हिमाच्छादित हो गये। सबसे अच्छी बात इस क्षेत्र की है, प्रदूषण रहित होना। अर्थात् प्रदूषण के लिए इस क्षेत्र को आधार मान कर जगह जगह प्रदूषण की जानकारी का अनुपात जानने मे मदद मिलेगी।

अंटार्कटिका का लगभग ९८ प्रतिशत हिस्सा ५ करोड़ वर्ष से बर्फ से दबा हुआ है। इसकी मोटाई डेढ़ किलोमीटर से लेकर चार किलो-मीटर या इससे अधिक भी है।

इंडियन मीटिओरोलॉजिकल सोसायटी' की पत्रिका वायुमंडल ने मौसम विभाग के दो वैज्ञानिकों ए० के० शर्मा तथा के० एन० कत्याल की रिपोर्ट प्रकाशित करते हुए यह जानकारी दी है कि अंटार्क-टिका महाद्वीप मार्च से सितम्बर तक अंधेरे मे डूबा रहता है। इस महाद्वीप मे बर्फीली हवाएँ समुद्र तट की ओर चलती हैं जिसकी गति तीन सौ किलोमीटर प्रति घंटा तक पहुँच जाती है।

अक्तूबर से फरवरी तक यहाँ पर सूर्य की रोशनी तो बहुत अधिक तीव्रता से पड़ती है लेकिन बर्फ की चमकदार सतह के कारण रोशनी परावर्तित हो जाती है।

इस क्षेत्र मे पहला भारतीय अभियान दल ९ जनवरी १९८२ में

पहुँचा था जिसका नेतृत्व सागर विकास विभाग के सचिव सैयद जहूर कासिम ने किया था। ये जिस स्थान पर रुके थे उसका नाम दक्षिण गंगोत्री रखा गया।

अंटार्कटिका का पता सर्वप्रथम १८२० के आसपास चला था। विश्व के तमाम देशों ने अपने-अपने खोजी दल यहाँ भेजे हैं।

अंटार्कटिका का तापमान शून्य में कई डिग्री सेल्सियस नीचे है। यहाँ पर तमाम विकसित तथा प्रतिभा सम्पन्न देश अपने वैज्ञानिकों को भेजने की होड़ में लगे हैं। इस होड़ का कारण वहाँ सोने तांबे, लोहे और कोयले के प्रचुर मात्रा में भंडारों का होना बताया जाता है। वहाँ पर आसपास के समुद्र में अन्य महाद्वीपों की तुलना में तीन गुना मछलियाँ हैं। अनुमान लगाया गया है कि इस क्षेत्र में डेढ़ अरब टन से लेकर ६ अरब टन तक झींगा जैसा जलजीव 'क्रिल' हैं। सन् १९८६ तक वहाँ से रूस, जापान, पोलैंड, आदि देशों द्वारा चार लाख टन क्रिल पकडी जा चुकी है। सम्भवतः अगले दशक के प्रारम्भ तक यहाँ से एक करोड़ टन क्रिल निकाल ली जायेगी।

यूं तो अंटार्कटिका मे अभी वायुमंडल कत्तई दूषित नही है लेकिन यहाँ की सम्पदा को उठाने की होड़ निश्चित रूप से इस रमणीय वातावरण को प्रभावित कर देगी। पता चला है कि १९८७ तक यहाँ से प्राकृतिक गैस निकालने का काम अमेरिका द्वारा शुरू किया जायेगा।

अंटार्कटिका से लगे समुद्र तट पर वैज्ञानिकों को लगभग ४० जातियों के पक्षी मिले है। यहाँ पर सबसे अधिक संख्या मे पेंगुइन देखे गये हैं। अंटार्कटिका मे खोज करने गये भारतीय वैज्ञानिको ने वहाँ के पेंगुइनों से दोस्ती कर ली थी। नर तथा मादा पेंगुइन बारी-बारी से अपने अंडे सेते हैं।

पेंगुइन की कई जातियाँ यहाँ पर पायी गयी है। एम्परर, किंग एडेली चिनस्ट्रेप तथा गेंटू। एम्परर पेंगुइन अपने मखमली पजे मे

अंडे रख कर उन्हें सेता है। इस जाति में साल भर में एक ही सन्तान पैदा होती है। किंग तीन साल में दो सन्तान उत्पन्न करता है। पेंगुइन का आहार मछलियाँ तथा 'स्क्विड' है।



अंटार्कटिका में पेंगुइनें

अंटार्कटिका में आस्ट्रेलियाई अड्डे की एक झील का पानी पिछले दिनों जम गया है। यह नोनिया झील का पानी वायुमंडल में आदमियों द्वारा छोड़ी गयी कार्बन डाई आक्साइड के कारण जमा है। यदि इस महाद्वीप में कोयला तेल तथा लोहे की खुदायी शुरू हो गयी तो ५ करोड़ वर्ष से संरक्षित मानव जाति की यह अमूल्य निधि भी प्रदूषण का शिकार हो जायेगी। यदि यहाँ के वातावरण का तापमान बढ़ा तो यहाँ की बर्फ पिघल कर महासागरों का जलस्तर ४५ से ६० मीटर ऊँचा उठा देगी तथा महाप्रलय की स्थिति तक आ सकती है।

इस महाद्वीप में गये वैज्ञानिकों ने अनेक रोचक तथ्यों का पता लगाया है। यहाँ झील के नीचे के बर्फ की तहों से 'फाइटोप्लैक्स' नामक एक कोशिका के शैवाल (काई) का पता लगाया है। शून्य से

कई डिग्री नीचे जीवित रहने की नयी प्रणाली की जानकारी वैज्ञानिकों को प्राप्त हुई है।

अटार्कटिका मे भारतीय वैज्ञानिक मौसम, पर्यावरण, भूसरचना, आर्द्रता, बादल दृश्यता, जीवाश्म, विकिरण जीव-वनस्पति खनिज तथा जीव-सपदा सम्बन्धी अनेकानेक प्रयोग करेंगे।

भारत से अटार्कटिका आने जाने मे पहली बार वैज्ञानिको को २१ हजार किलोमीटर की दूरी तय करनी पडी थी।

अटार्कटिका अभियान की सफलता के साथ कई ऐसे सकेत मिले हैं जिनसे वर्तमान शताब्दी के तमाम महत्वपूर्ण भूभौतिकीय सवालों, पृथ्वी के वायुमडल जलवायु विषयक प्रश्नो को समझने मे यह महाद्वीप हमारी मदद करेगा।

हमारे धुधले इतिहास को समझना भी शायद आसान हो जायेगा। इस बात का पूरा पूरा अदाज लगाया गया है कि अटार्कटिका के हिम आवरण मे पृथ्वी के पर्यावरण सम्बन्धी अनेक सुराग दबे हुए हैं।

दक्षिण ध्रुव का यह विशालतम हिमाच्छादित भाग, वातावरण मे ताप और आर्द्रता उत्पन्न करके तूफानो और मौसमी वर्षा को जन्म देता है पृथ्वी के ताप को सतुलित रखता है तथा भारतीय मानसून तथा वातावरण को असाधारण रूप से प्रभावित करता है।

प्रदूषणमुक्त यह प्रदेश एक ऐसा सदर्भ है जहाँ से प्रदूषण सम्बन्धी जानकारियो को 'मानीटर' किया जा सकता है।

पृथ्वी का मौसम हर साल अजीब तरह से बदल रहा है। इस मौसमी बदलाव की जानकारी मौसम के इतिहास से हासिल की जा सकती है और यह इतिहास अटार्कटिका मे दबा हुआ है। विश्वव्यापी मौसम की भविष्यवाणी के लिए अटार्कटिका निश्चित रूप से एक सदर्भ बिन्दु है।

● ● ●

जंगलों का बेतहाशा कटना

पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण भाग पेड़-पौधो से सम्बन्धित है। जैसे-जैसे जनसंख्या बढती गयी हमारी आवश्यकताएँ भी बढती गयी। पृथ्वी पर मनुष्य के उत्पन्न होने के विषय मे यह मत दिया जाता है कि लगभग ३० लाख वर्ष पूर्व ही उसका जन्म इस जमीन पर हुआ। पुराने आँकड़ों के अनुसार सन् १८३० तक विश्व की जनसख्या महज एक अरब ही थी लेकिन सौ वर्षों में ही वह दो गुनी हो गयी। जन सख्या कम करने के लिए विभिन्न देशो ने प्रयास तब शुरू किया जब स्थिति विस्फोटक हो गयी। जो आबादी सन् १९३० में दो अरब थी वही १९६० में ३ अरब से भी ज्यादा हो गयी। १९७५ मे बढ कर ४ अरब तथा अब लगभग पाँच अरब तक जनसख्या हो गयी है। जनसंख्या में बढोत्तरी की दर के हिसाब से यह अनुमान लगाया जा रहा है कि इस शताब्दी के अंत तक जनसख्या ७ अरब से भी अधिक हो जायेगी।

परिवार बढे, रहने वाले बढे और उनके रहने की जगह कम होती गयी। लोगों ने रहने की जगह के लिए जगलो को काटना शुरू किया। अनाज की पैदावार बढाने के लिए भी भूमि को समतल किया जाने लगा। लेकिन रहने की कमी के कारण कृषि योग्य भूमि पर भी मकान बनाये जाने लगे। आज तो स्थिति यहाँ तक हो गयी है कि गाँवो में बाग बगीचे काट कर उन्हे बेचा जा रहा है। जिस तरह कृषि भूमि को रिहाइशी मकानो की शक्ल दी जा रही है उससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अगले दो एक दशक मे विश्व

की कृषि योग्य भूमि का एक तिहाई भाग नष्ट हो जायेगा।

वनो की उपयोगिता किसी से छिपी नही है। वन न केवल आम आदमी को आम जरूरत की चीजो मसलन ईंधन, इमारती लकडी, घास, चारा, पत्ती, फल-फूल आदि की आपूर्ति करते हैं अपितु तरह-तरह के जरूरी उद्योग-धन्धो जैसे तारपीन तथा बिरोजा, दियासलाई, कागज व हार्ड बोर्ड, प्लाईवुड, खेलकूद के सामान, पेंसिल पैंकिंग, लकडी के तमाम कारखानो के लिए कच्चा माल भी उपलब्ध कराते हैं। इन उद्योग धधो से लाखो लोगो को रोजगार मिलता है।

अब मान लीजिए लगातार पेडो को काटा जाता रहे और नया पेड न लगे तो हमारी वन सम्पदा कितने दिन तक टिकेगी। हमारे वनो की स्थिति दिन-प्रतिदिन ऐसी ही होती जा रही है। जगलो की वेतहाशा कटाई से होने वाले दुष्परिणामो से बेखबर लगातार उसे साफ किया जा रहा है।

हमारे ऋषि-मुनियो ने वृक्षो की सघन छाया के नीचे बैठ कर ही अध्यात्म चिंतन किया है। वृक्ष ही हमारे आश्रय स्थल रहे हैं। हमारी प्राचीन मान्यताएँ 'प्रकृति के साथ मैत्री' करने की सीख देती हैं। लेकिन सभ्यता के साथ साथ हम अपनी प्राचीन मान्यताओ को तिलाजलि देते गये। अकारण ही हरे भरे वृक्षो को काटा जाने लगा। भौतिकवादी सभ्यता ने मनुष्य के हाथो मे कुल्हाड़ी थमा दी तथा पेडो के हनन का कार्य शुरू हो गया। पैंकिंग के लिए आवश्यक लकडी की मात्रा पर वैज्ञानिको ने गम्भीर चिन्ता व्यक्त की है। अनुमान है कि सन् १९९० तक फलो को डिब्बो मे बन्द करने के लिए १ लाख ५० हजार पेड़ो को काटना पड़ेगा।

वनो का स्थानीय परिस्थितियो से परस्पर गहरा सम्बन्ध होता है। स्थानीय जलवायु को सूर्य की उष्णता, वर्षा, हवा तथा नमी प्रभावित करते हैं। वनो मे हवा की तेजी मे कमी रहती है, इसी-

लिए कृषि पैदावार की रक्षा के लिए वृक्षों की रक्षापंक्ति लगायी जाती है। कम ऊँचाई पर बनने वाले बादलों को खींच कर विस्तृत वन कुछ सीमा तक वर्षा में भी वृद्धि करते हैं। पेड़, पानी की बौछार



सूखते पेड़ कटते जंगल

को बचाते हैं जिससे मिट्टी की कटान कम हो जाती है। चट्टानी क्षेत्रों में वृक्षों की जड़ें मृदा में नीचे काफी गहराई तक चली जाती है तथा मिट्टी के कणों को आपस में बांधे रहती है। वन कटते ही मिट्टी की रक्षा करने वाली सूखी पत्तियों और धरण (ह्यूमस) पानी में घुल कर निकल जाती है। वर्षा ऋतु में मृदा पानी को सोखती नहीं और इस तरह जल की धारा बड़ी तेजी से बहती है। वह अपने साथ-साथ मृदा और बजरी पत्थर तक बहा ले जाती है। सब कुछ घुल जाता है और नंगी चट्टान ऊपर निकल आती है।

मिट्टी के कट कर अधिक मात्रा में बह जाने से नदियों का तल

भी ऊपर उठ आता है। यदि पानी मे सिल्ट हो तो इससे उसका बहने का मार्ग भी बदल जाता है। ऐसी दशा में पानी नदी के बहाव से हट कर खेतो को भी नुकसान पहुँचाता है।

आबादी तथा मशीनीकरण के बढ़ने के साथ ही साथ पेड़ो की कटाई का सिलसिला तेजी से चल पड़ा। पेड़ो के कटने से पक्षी आश्रय विहीन होने लगे हैं। जगल के जंगल साफ होने जा रहे हैं, पहाड़ों की पीठ पर उगे पेड़ो की कतारें धीरे-धीरे लुप्त होने लगी और यहीं से बाढ का प्रकोप शुरू हो गया।

घने जंगल वर्षा के पानी के वेग को कम करने की क्षमता रखते है। लेकिन जैसे-जैसे उनकी सघनता मे कमी आती गयी वैसे-वैसे उनकी पानी के वेग को रोकने की क्षमता भी घटती गयी। पहाड़ों से काटे गये जंगलों का दुष्प्रभाव नदियों मे बाढ की शक्ल मे उभर कर सामने आया। पहाड़ो की ढलानों से हरहराता पानी मिट्टी को काटता हुआ नदियों मे समाने लगा। नदियो का वेग इस मिट्टी से कम होता गया। उनकी गहराई घटती गयी और पानी उफन कर बाहर चारो ओर बहने लगा। नदियों की जल धारण करने की क्षमता घटती गयी और उनके किनारे फैलते गये। बाढ़ों का प्रकोप धीरे-धीरे मानवता को अपनी चपेट में लेने लगा है। पृथ्वी मे मौजूद मिट्टी की उपजाऊ परत पानी के तेज बहाव से क्षतिग्रस्त होती रहती है। वैज्ञानिक खोजो से यह बात प्रकाश में आयी है कि उपजाऊ मिट्टी की हलकी परत भी प्रकृति द्वारा सैकड़ो वर्षों की मेहनत से बनायी जाती है। एक मामूली बाढ प्रकृति की वर्षों की मेहनत क्षण भर में नष्ट कर देती है। और क्षणाश में टनों उर्वरक मृदा नदियों की गोद मे समाहित होकर निष्क्रिय हो जाती है। वैज्ञानिकों के अनुसार हर वर्ष भारतवर्ष मे ६० से लेकर ७० करोड़ टन तक उपजाऊ मिट्टी नदियों की भेंट चढ जाती है तथा लगभग सात अरब रुपये मूल्य का खनिज तत्व समुद्र मे मिल जाते हैं।

जगलो की बेतहाशा कटाई से चिंतित वैज्ञानिको ने तो यहाँ तक कह दिया था कि यदि नये पेड नही लगाये गये तो आज भी दो शताब्दियो मे पेडो के गायब हो जाने का खतरा बन जायेगा।

पहाडो पर जगलो को बेतहाशा काटने से रोकने के लिए २७ मार्च, १९७३ मे चमोली के गोपेश्वर नामक स्थान पर 'चिपको आदोलन' की शुरूआत हुई। इसे एक शुभ लक्षण माना जा सकता है। यहाँ के निवासियो ने पेडो के तनो पर लिपट कर कुल्हाडी के वार रोक दिये। एक नये शब्द 'अग वाल्ठा' यानी आलिंगन का जन्म हुआ और ग्रामीणो ने वहाँ पर जगल के काटने पर पूरी तरह से रोक लगा दी।

इस चिपको आदोलन के नेता श्री सुन्दरलाल बहुगुणा है जिनके सद्‌प्रयासो से प्रदूषण का कम स कम एक कारण का निवारण हो गया। भले ही सपूर्ण विश्व के हिसाब से यह प्रयास बहुत ही थोडा है लेकिन इस शुरुआत को नगण्य नही माना जा सकता।

फोटो सश्लेषण विधि से पौधे हवा की कार्बन डाइ आक्साइड से ग्लूकोज बनाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक विषैली गैस को पेड सोख लेते है। अनेको प्रकार के पेड पौधे वातावरण मे फैली विषैली तथा अनुपयोगी गैसो को शोषित कर वायुमडल को प्रदूषण से मुक्त करने मे मदद करते हैं। वैज्ञानिक शोध से पता चलता है कि पत्तो की स्पजी सतह विभिन्न गैसो को सोख लेती है तथा उन्हें ऐसे तत्वो मे बदल देती है जो हानिकारक नही होते। वैज्ञानिको ने दावा किया है कि गुलाब के पौधो तथा फूलो से प्रदूषण को नियन्त्रित किया जा सकता है।

ईंधन के रूप मे इस्तेमाल करने क लिए पेडो की अधाधुध कटाई पर नियत्रण जरूरी है। उत्तर प्रदेश सरकार ने 'चिपको आदोलन' की माँग को स्वीकार करते हुए पर्वतीय जिले मे एक हजार मीटर से अधिक ऊँचाई एव ३० अश से अधिक ढाल पर स्थित वनो की कटाई पर प्रतिबध लगा दिया है।

भारत सरकार ने आर्थिक तथा औद्योगिक महत्व की प्रजातियों का वृक्षारोपण कार्यक्रम बड़ी तेजी से चलाया है। पल्प तथा कागज उद्योग की कच्चे माल की आपूर्ति के लिए शीघ्र आने वाली प्रजातियाँ तथा यूकिलप्टस, पापलर एवं बाँस के पेड़ जगह-जगह लगाये जा रहे हैं।

सरकार ने वृक्षारोपण के महत्व को समझाने के उपाय निकाले हैं तथा लोगों को इस बात के लिए प्रेरित भी किया जा रहा है कि सड़कों के किनारे वृक्ष लगाये जाँय। ग्रामीण क्षेत्रों में इस सम्बन्ध में प्रशिक्षण भी दिया जाता है।

केन्द्र तथा प्रदेश सरकारें विभिन्न शासकीय विभागों, संस्थाओं, गैर सरकारी संस्थाओं की उपलब्ध एवं खाली भूमि पर वृक्षारोपण कार्यक्रम चलाने का प्रोत्साहन दे रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन प्रजातियों का वृक्षारोपण किया जा रहा है।

उत्तर प्रदेश म वन चेतना केन्द्रों की स्थापना करके कृषकों को वनों तथा वन्य प्राणियों के सम्बन्ध में जानकारी कराई जा रही है।

वर्ष १९८२ ८३ से उत्तर प्रदेश का सम्पूर्ण वन विदोहन कार्य वन विभाग को सौंप दिया गया है।

भारत के नये वन विधेयक म सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह किसी भी स्थान को जगल घोषित कर सकती है। वन अधिकारियों को मजिस्ट्रेट का पद दिया गया है।

वैसे तो सरकार स्वय पर्यावरण सुधारने के लिए वनों की सुरक्षा तथा सरक्षण पर ध्यान द रही है लेकिन आम आदमी को भी इस ओर प्रयास करना होगा। उसे इस बात की जानकारी करानी होगी कि वह जगलों के बेतहाशा कटने से उत्पन्न होने वाले खतरों के बारे में जानें। यदि सचमुच इस ओर समुचित ध्यान दे दिया गया तो निश्चित रूप से बाढ़ जैसी विनाशकारी स्थिति तथा प्रदूषण के खतरे से बचने के साथ साथ उपजाऊ मिट्टी की भी रक्षा हो सकेगी। ● ●

पृथ्वी का ताप बढ़ रहा है

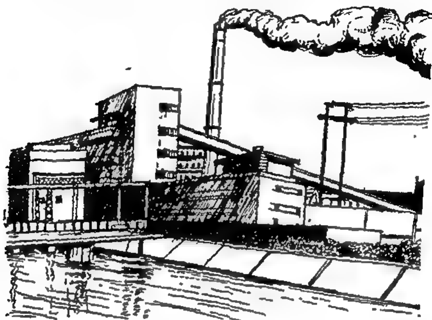
भू-वैज्ञानिक ने अपने प्रयोगो से पता लगाया है कि पृथ्वी का ताप धीरे-धीरे बढता जा रहा है। पूर्व मे यह ताप वृद्धि सौ वर्ष मे एक डिग्री सेल्सियस की ही थी लेकिन अब अनुमान यह है कि अगले पचास वर्षों मे ही उसका तापक्रम पाँच डिग्री सेल्सियस तक बढ जायेगा। यदि यही प्रक्रिया इसी तरह आगे भी जारी रही तो वैज्ञानिको का कहना है कि विश्व का मौसम इससे बुरी तरह प्रभावित होगा। वर्षा, हवा तथा तूफान की स्थितियाँ तो बदलेंगी ही, ध्रुवो पर जमा बर्फ तेजी से पिघल कर समुद्रो के तल को ऊँचा कर देगी तथा इससे ढेर सारा भूभाग जलप्लावित भी हो जायेगा।

आमतौर पर वातावरण मे सूखी हवा मे सिर्फ ०.०२५ प्रतिशत ही कार्बन डाई आक्साइड होती है। शेष ७८ प्रतिशत नाइट्रोजन, २० प्रतिशत आक्सीजन, ०.६४ प्रतिशत, आर्गन तथा शेष कुछ मात्रा मे हीलियम, निओन, जीनान, तथा हाइड्रोजन है। जब हवा की सरचना उपर्युक्त तरह से होती है तो कार्बन डाइ आक्साइड तथा वातावरण मे एक साम्य बना रहता है लेकिन वातावरण मे कार्बन डाई आक्साइड की बढती हुई मात्रा ने उक्त साम्य को बिगाड दिया है। वैज्ञानिको का मत है कि कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा मे बढोत्तरी ही पृथ्वी की ताप वृद्धि का प्रमुख कारण है।

आखिर वे कौन से कारण है जो हवा मे कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा को लगातार बढा रहे हैं ?

विगत शताब्दी मे वायुमडल में कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा

मे १६ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। यह वृद्धि बड़े-बड़े उद्योगों की चिमनियों, ईंधन, तेल के जलने, घरों में लकड़ी के जलाने से हुई है।



वातावरण मे कार्बन डाई आक्साइड का घुलना

वायुमंडल में आवश्यकता से अधिक कार्बन डाई आक्साइड गैस को दूर करने के लिए प्रकृति द्वारा प्रदत्त वृक्षों या दूसरे शब्दों में कहें तो वनों की कमी के कारण यह गैस वातावरण मे बढ़ती जा रही है। वस्तुत पेड़-पौधे सामान्य स्थिति मे कार्बन डाई आक्साइड को सोख-कर अपना भोजन बनाते हैं तथा एवज में आक्सीजन निकालते हैं जो हमारे सांस लेने के काम आती है।

शहरीकरण के साथ ही साथ पेडो की अंधाधुंध कटाई से प्रकृति की यह देन धीरे-धीरे विनष्ट होती जा रही है जिसका परिणाम हमे भुगतना पड़ रहा है।

वस्तुतः प्रकृति ने हर चीज में एक साम्य बना रखा था लेकिन

ज्यो ज्यो हम बुद्धिमान होते गये हमने प्रकृति पर अनाधिकार रूप से जुल्म ढाने शुरू किये। प्राकृतिक सतुलन को बिगाडने की जिम्मेदारी से हम इकार नही कर सकते। हमने वायुमडल मे बेतहाशा कार्बन डाई आक्साइड भर दिया और इस तरह खुद अपने लिए विष घोला।

कार्बन डाई आक्साइड अन्य गैसो से अपेक्षाकृत भारी होती है और इस कारण उसने वायुमडल के निचले हिस्से मे एक परत सी बना ली। यही परत पृथ्वी का तापक्रम बढाने की वजह है।

जैसा कि हम जानते हैं, सूर्य की ऊर्जा पृथ्वी को प्राप्त होती रहती है। सूर्य से प्राप्त ऊर्जा को पृथ्वी उत्सर्जित करती है या बाहर निकालती है लेकिन कार्बन डाई आक्साइड की पर्त इस ऊर्जा को सोखती जाती है तथा उसे वायुमडल के बाहर निकलने नहीं देती। पृथ्वी द्वारा उत्सर्जित यह इन्फ्रारेड रेडियेशन जिसे गैसीय परत सोख लेती हैं तथा वायुमडल के निचले हिस्से का तापक्रम बढा देती है। कार्बन डाई आक्साइड द्वारा इस प्रकार ऊर्जा का शोषण कर उसे उत्सर्जित न करना पौध घर प्रभाव या ग्रीन हाउस इफेक्ट कहलाता है।

कार्बन डाई आक्साइड के माध्यम से पृथ्वी का तापक्रम बढाने मे मुख्य रूप से उद्योग धधे तथा आटोमोबाइल उद्योग ही जिम्मेदार हैं। सामान्य तौर पर औद्योगिक नगरो का तापमान आसपास के स्थानो से २ से ३ डिग्री सेल्सियस तक अधिक होता है। इसका कारण इन औद्योगिक नगरो द्वारा कारखानो से कार्बन डाई आक्साइड को वातावरण मे मिलाना ही है।

एक अध्ययन के अनुसार औसत रूप से एक व्यक्ति प्रति दिन चार सौ लीटर कार्बन डाई आक्साइड श्वसन क्रिया द्वारा बाहर निकालता है। इस तरह समस्त भूमडल कार्बन डाई आक्साइड से भर सकता था यदि पृथ्वी पर वनस्पतियाँ न होती। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ० बेकर

के अनुसार १६ पेड़ एक व्यक्ति द्वारा साँस के लिए जरूरी कुल आक्सीजन पैदा करते हैं।

विशेषज्ञों के अनुसार औसतन १५ हजार किलोमीटर चलने वाली एक कार ४ हजार ३ सौ ५० किलो लीटर आक्सीजन लेकर ३ हजार



आटोमोबाइल का धुआँ

दो सौ पचास किलो लीटर कार्बन डाई आक्साइड तथा कई हजार किलो लीटर अन्य विषाक्त गैस वायुमंडल मे छोड़ती है।

विभिन्न ताप बिजली घरों तथा अन्य कारखानो को ठण्डा रखने के लिए नदियो से जल लिया जाता है जिसे पुनः नदी मे मिला दिया जाता है। इस स्थिति मे नदियों का ताप बढ़ जाता है। परमाणु बिजली घरो की वजह से भी नदियों के ताप मे वृद्धि हो रही है।

नदियों मे तापवृद्धि, उनमे रहने वाले जीवों के लिए घातक सिद्ध हुई है। ताप-वृद्धि का सर्वाधिक बुरा असर मछलियो पर पड़ता

है जो या तो मर जाती हैं या उनकी प्रजनन शक्ति नष्ट हो जाती है।

पेड़-पौधों के अतिरिक्त वायुमंडल से कार्बन डाई आक्साइड को कम करने का काम पत्थर, समुद्र तथा वर्षा भी करते हैं। पत्थर उक्त गैस को सोख कर कैल्शियम कार्बोनेट समुद्र सोखकर कार्बोनेट तथा पानी कार्बोनिक अम्ल बनाते हैं।

नये शोधों के अनुसार पृथ्वी के तापक्रम में वृद्धि के लिए सिर्फ कार्बन डाई आक्साइड की ही भूमिका नहीं है। वैज्ञानिकों का मानना है कि नाइट्रस आक्साइड या 'लाफिंग गैस' भी इसके लिए जिम्मेदार है। पता लगाया गया है कि वातावरण में नाइट्रस आक्साइड की सान्द्रता भी बढ़ रही है। यह वृद्धि प्रति वर्ष ०.५ प्रतिशत तक की हो रही है।

पृथ्वी के तापक्रम में हो रही वृद्धि निश्चित रूप से चिंता का विषय है। आज जब कि औद्योगीकरण बढ़ रहा है, वायुमंडल में कार्बन डाई आक्साइड को कम करने का कोई प्रयास नहीं किया जा रहा, प्रदूषण की यह समस्या पूरी मानवता के विनाश का संदेश भेज रही है।

ओजोन परत की क्षति

पृथ्वी के जीवधारियों को सूर्य के घातक गामा विकिरणों से बचाने का काम ओजोन की पट्टी करती है। ओजोन का एक अणु आक्सीजन के तीन परमाणुओं से मिल कर बनता है। इस परत की मोटाई महज ३ मिली मीटर की होती है। लेकिन यह तीन मिली मीटर की परत मानव जीवन के लिए वरदान ही है।

रेत चट्टानों तथा खानों का 'स्थल मंडल' लगभग ६० किलो मीटर मोटा है। इसी तरह नदियों झीलों तथा जल कूपों द्वारा पृथ्वी पर 'जलमडल' का निर्माण होता है। पृथ्वी के चारों ओर या दूसरे शब्दो मे कहे तो लगभग ३/४ भाग जल ही है।

इस पृथ्वी के चारों ओर हवा की, एक परत है जिसे वायुमंडल कहा जाता है। इसी वायुमडल में आक्सीजन होती है जिसकी वजह से पृथ्वी पर जीवन सभव हो सका। वायुमंडल पृथ्वी की सतह से लेकर ९ हजार ६ सौ किलोमीटर से भी ज्यादा दूरी तक फैला हुआ है लेकिन इसका अधिकाश भाग पृथ्वी की सतह से ३२ किलोमीटर की दूरी तक सीमित है। पृथ्वी की आकर्षण शक्ति जिसे हम गुरुत्वाकर्षण भी कहते है वायुमडल को अपनी ओर आकर्षित किये हुए है और वह धरती के सम्पर्क मे ही है।

पृथ्वी की सतह से करीब १० किलोमीटर की ऊँचाई पर जो वायुमडल का हिस्सा विद्यमान है उसका ताप ७० किलोमीटर की मोटाई तक एक जैसा है।

जगलो के अधाधुध विनाश तथा अनेक विषाक्त गैसो का वातावरण हमारे वायुमडल के लिए घातक ही सिद्ध हो रहा है। विषैली गैसो मे क्लोरीन तथा क्लोरो फ्लोरो कार्बन मुख्य रूप से वायुमंडल को नष्ट कर रही हैं। क्लोरो-फ्लोरो कार्बन सूर्य के विकिरण की उपस्थिति मे-विखडित होकर क्लोरीन मुक्त करता है। इस क्लोरीन की वजह से समतापीय मडल मे उपस्थित ओजोन को क्षति पहुँच रही है। ओजोन की पटटी पृथ्वी के जीवन के लिए रक्षात्मक कवच का काम करती है। यह सूर्य के घातक गामा तथा कास्मिक विकिरणो को पृथ्वी की सतह तक आने से रोकता है।

वैज्ञानिको ने ओजोन पट्टी की क्षति पता लगाने के लिए प्रयोग किये हैं तथा यह पता लगाया गया है कि १९७० से १९७९ के मध्य ओजोन की मात्रा में प्रतिवर्ष ०५ प्रतिशत की दर से कमी हो रही है।

वैज्ञानिको का अनुमान है कि यह दर तीव्र तथा विनाशकारी है तथा यदि इसका क्षय इसी प्रकार होता रहा तो आगामी सौ वर्षो मे यह दर १६ ५ प्रतिशत हो जायेगी।

ओजोन की पटटी के अभाव मे सूर्य से आने वाली घातक किरणो से लोगो की त्वचा पर विनाशकारी प्रभाव पडेगा। लोग त्वचा कैंसर तथा सन बर्न के शिकार हो जायेंगे तथा सृष्टि विनाश के कगार पर आ जायेगी।

इस वायुमडलीय भाग को स्ट्रेटोस्फियर या समताप मडल कहा जाता है। इस समताप मडल के ऊपर तापमान धीरे-धीरे बढता जाता है।

समताप मडल के ठीक ऊपर विद्युत आवेशित आयन विद्यमान हैं। ये आयन रेडियो सूक्ष्म तरग को पृथ्वी की ओर परावर्तित कर देते हैं। इन्ही आयनो की वजह से दूर सचार माइक्रोवेव' या सूक्ष्म

तरगों से सभव हो सका है। इस आवेशित आयनीय भाग को आयनोस्फियर या आयन मडल कहा जाता है। यहाँ का तापमान सौ डिग्री सेल्सियस तक है। ऊँचाई मे बढने पर यहाँ का तापमान ४००°C तक पहुँच जाता है।

आयन मडल के ऊपर वहिर्मंडल या एक्सोस्फियर है। यहाँ पर वायु की मात्रा तो बेहद कम है लेकिन तापक्रम बहुत ज्यादा है। इसकी मोटाई लगभग १ हजार किलोमीटर तक फैली है। इस वहिर्मंडल के बाहरी क्षेत्र मे विभिन्न कक्षाओ मे भू उपग्रह चक्कर लगाते रहते हैं।

सूर्य की किरणें तथा तरह-तरह के विकिरण वहिर्मंडल तथा आयन मडल से होते हुए समताप मडल तक पहुँचते हैं। यहाँ पर मौजूद ओजोन की पट्टी सूर्य की खतरनाक किरणो को पृथ्वी के अन्दर प्रवेश करने से रोक देती हैं। ओजोन की पट्टी को रसायनो म क्षतिग्रस्त होने से बचाने के लिए प्रयास किये जा रहे हैं। लेकिन इस ओर अभी तक प्रभावी कदम नही उठाये जा सके हैं। ओजोन पट्टिका का क्षीण होते जाना वायुमडल तथा मौसम पर दूरगामी प्रभाव डालेंगे।



हवा में जहरीलापन

बढते हुए वायु प्रदूषण पर सन् १९५० के आसपास अमरीकी वैज्ञानिको ने विचार गोष्ठियाँ आयोजित की। अमेरिका के स्वास्थ्य रक्षा केन्द्र ने बताया कि वायुमडल लगातार दूषित होता जा रहा है तथा इस दूषित वायु के सेवन से सांस, दमा की बीमारी, फेफडों में खराबी तथा कैंसर आदि असाध्य रोग भी हो जाते हैं।

वायुमडल में कार्बन डाई आक्साइड की बढती मात्रा के साथ ही साथ कार्बन मोनो आक्साइड नाइट्रोजन आक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड की मात्रा भी धीरे धीरे बढती जा रही है।

वैज्ञानिको का कहना है कि एक सामान्य व्यक्ति प्रतिदिन बाइस हजार बार सांस लेता है यानि पैंतीस पौण्ड वायु का सेवन करता है। इस दौरान वह लगातार प्रदूषित वायु अपने फेफडो मे ले जाता है तथा धीरे धीरे फेफडो मे खराबी आने लगती है। कभी कभी तो कार या ट्रक से निकला धुआ लोगो को बेहोश तक कर देता है।

कार्बन मोनो आक्साइड गैस के हवा मे मिल कर मनुष्य के शरीर मे प्रवेश से उसका रक्त भी दूषित होता है। कार्बन मोनो आक्साइड के सेवन से सिर दर्द थकावट आदि होती है। पीलिया तथा हृदय रोग की शिकायतें भी मिली हैं।

सल्फर डाई आक्साइड के वायुमडल मे मिल जाने से इमारतों के क्षरण के साथ ही साथ आँख, नाक, गला, फफडे मे जलन आदि होती है। सल्फर डाई आक्साइड की वजह से हरे भरे खेतो तथा गन्ने की फसलो को बेहद नुकसान पहुँचता है। अमेरिका के कई नगरो म सल्फर

डाइ आक्साइड गैस वर्षा के पानी मे घुल कर अम्ल के रूप मे बरसता है जिसकी वजह से अनेक पक्षियो के पख तक जल जाते हैं और वनस्पतियो को भी क्षति पहुँचती है।

हवा मे फ्लोराइड के अणुओ से भी वनस्पति को क्षति पहुँच रही है। इससे पेड पौधो के झुलसने का खतरा है। फ्रास के अल्पस पहाड की वनस्पति फ्लोराइड की वजह से नष्ट हो गयी है।

कारखानो से मुक्त हुई नाइट्रोजन आक्साइड भी प्राण लेवा गैस है। सन् १९६५ मे अमेरिका के क्लीवलैण्ड नगर मे एक्सरे फिल्मो मे लगी आग के कारण १२५ लोगों की मृत्यु हो गयी थी। बाद मे मृत्यु का कारण अग्निकाड के दौरान मुक्त नाइट्रोजन आक्साइड पाई गयी।

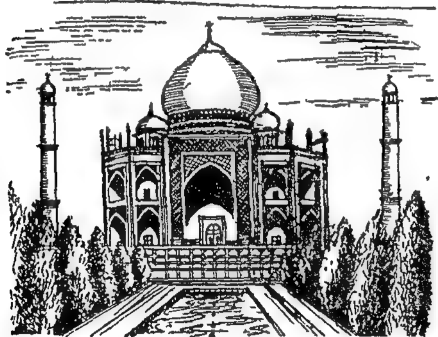
दिसम्बर १९८४ मे भोपाल मे यूनियन कार्बाइड से रिसने वाली 'मिक' मिथाइल आइसो साइनेट गैस ने प्रदूषण के इतिहास मे एक पन्ना और जोड दिया। 'मिक' एक ऐसा रासायनिक तरल पदार्थ है जो कीटाणुनाशक बनाने के काम आता है तथा थोडी-सी गर्मी पाकर विनाशकारी गैस बन जाता है। इसके रिसने से भोपाल मे अनेक लोग मारे गये तथा हजारो बीमार होकर अस्पतालो मे पडे हैं। अनुमान है कि इसका दूरगामी प्रभाव सन्तति पर भी पडेगा।

भारत मे बम्बई, कानपुर तथा फिरोजाबाद मे सर्वाधिक वायुप्रदूषण आँका गया है। इन नगरो मे वायुप्रदूषण का कारण कारखानो से निकले धुँए तथा परिवहन के धुँए ही हैं।

कोयला तथा चूने के खानो मे काम करने वाले श्रमिको की मृत्यु बहुत जल्दी हो जाती है। १९७४ मे झरिया की कोयला खानों के वायुप्रदूषण पर हुए सेमिनार के दौरान यह बात प्रकाश मे आयी कि कोयला खानो मे कार्यरत मजदूरो तथा इस क्षेत्र मे रहने वाले लोगो को रतौंधी की बीमारी हो जाती है। वैज्ञानिको के अनुसार कोयला

खानो के आसपास के वातावरण मे धूल तथा कोयले के रासायनिक तत्वो के फैले रहने के कारण ही वहाँ के लोगो मे इस तरह का रोग फैला है।

तेल शोधक कारखानो से निकली सल्फर डाई आक्साइड वायुमडल के जल कणो से मिल कर सल्फ्यूरिक अम्ल बनाता है। यह अम्ल इमारतों तथा वनस्पतियों पर अपना कुप्रभाव धीरे-धीरे छोड रहा है। सल्फर डाई आक्साइड की वजह से ही सुप्रसिद्ध ताजमहल का सगमर



सल्फर डाई आक्साइड से 'ताज' को खतरा

मर धीरे धीरे काला होता जा रहा है। ताजमहल को इस खतरे से बचाने के लिए उसके चारो ओर वृक्षरोपण किया जा रहा है।

आटोमोबाइल के धुंओ मे व्याप्त अदृश्य विषाक्त कण श्वास नलिका मे जमा होकर मनुष्य को बीमार कर देते हैं। वे फेफडो को भी क्षतिग्रस्त कर देते हैं। वायु प्रदूषण की दर ६ प्रतिशत वार्षिक तक है।

अमरीकी वायुप्रदूषण विभाग के अध्यक्ष डॉ० जान के० टेलर के अनुसार यदि प्रदूषण की दर इसी तरह बढती रही जिसका प्रमुख कारण हमारी फैक्टरियाँ तथा वाहनो से निकलने वाला धुँआ है तो हमारा जिन्दा रहना मुश्किल हो जायेगा ।

आन्ध्र विश्वविद्यालय के पर्यावरण विभाग के अध्यक्ष प्रो० टी० शिवाजी राव द्वारा किये गये शोध के अनुसार मथुरा तेलशोधक कार खाने की चिमनियाँ प्रतिदिन एक सौ टन कार्बन मोनो आक्साइड, ७० टन सल्फर डाई आक्साइड, ५० टन हाइड्रो कार्बन तथा १६ टन अन्य गैसो का उत्सर्जन करेंगी ।

कानपुर महानगर मे किये गये सर्वेक्षण के अनुसार यहाँ के वायु-प्रदूषण मे व्याप्त धुंध तथा विषैली गैस से यहाँ के जनजीवन को गभीर खतरा पैदा हो गया है । रिपोर्ट मे चेतावनी दी गयी है कि यहाँ के प्रति वर्ग किलोमीटर वायुमडल मे औसतन सौ टन धूल हमेशा रहती है जिसकी वजह से टी० बी० सहित रक्त तथा त्वचा के गभीर रोग फैल सकते हैं ।

वैज्ञानिको के अनुसार केवल भारतवर्ष मे कोयला एव अन्य ईंधनो के दहन से १० लाख मीट्रिक टन कार्बन मोनो आक्साइड तथा २० हजार मीट्रिक टन हाइड्रोजन सल्फाइड गैस वायुमडल मे मिल रही है ।

नाइट्रोजन आक्साइड तथा वायुमडल की अन्य गैसो से मिल कर 'धूमकोहरे' को बनाती है जो प्राणियो के लिए नितान्त घातक सिद्ध हुई है ।

परिवहन के धुएँ से होने वाले प्रदूषण का शिकार पश्चिमी देश सर्वाधिक हुए हैं । धुंए का सेवन करने वाला प्रतिदिन बराबर लगभग नौ सिगरेट के धुंआ अपने फेफडो मे ले जाता है । मोटरगाडियो से निकलने वाले कुछ हाइड्रोकार्बनो का जानवरो पर परीक्षण किया गया जो कैंसर पैदा करनेवाले प्रमाणित हुए हैं ।

कार्बनडाई आक्साइड की १५०० इकाई प्रति दस लाख वायुकण होने पर मनुष्य के जीवन के लिए खतरनाक साबित हुए है। सर्वेक्षणों से पता चला है कि लदन, न्यूयार्क तथा शिकागो आदि शहरो मे कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा एक सौ इकाई तक हो गयी है।

परमाणु विस्फोटो ने भी विभिन्न तरह के विकिरण के द्वारा पर्यावरण को प्रभावित किया है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापान मे गिराये गये परमाणु बमो से उत्सर्जित विकिरण का प्रभाव अभी भी



परमाणु विस्फोट का विकिरण

वहाँ विद्यमान है। वहाँ पर त्वचा के रोग से लोगो को अभी भी मुक्ति नही मिल सकी है। परमाणु विकिरणो या रेडियो धर्मी तत्वो के कारण मनुष्य की प्रजनन शक्ति तक क्षीण होती पाई गयी है। इसके परिणामस्वरूप भावी सतानें तक विकलांग हो रही हैं।

तेज रफ्तार से चलने वाले जहाजो के ईंधन तथा राकेट तथा उपग्रहो ने भी वायुमडल मे विनाशकारी गैसो मे वृद्धि की है।

जनसख्या वृद्धि के साथ-साथ औद्योगिकीकरण पर्यावरण को किस हद तक प्रभावित कर रहा है इससे बेखबर होकर हम लगातार विकास के नाम पर विषवमन करते जा रहे हैं। लगातार चिमनियो से उठते धुएँ हमे चेतावनी दे रहे हैं लेकिन हम इससे अनजान हैं।

हमे होश बहुत देर मे आता है। हम तब तक वायुमडल के प्रति चिंतित नहीं हैं जब तक हमे साँस लेने मे प्रत्यक्ष रूप से परेशानी नही हो रही लेकिन परोक्ष रूप से हम लगातार विषपान कर रहे हैं। वायु-मडल को दूषित होने से बचाने के लिए सरकारें तो जागरुक हो गयी हैं लेकिन इस भयकर समस्या का समाधान सिर्फ सरकार नही कर सकती। ससार मे रहने वाले प्रत्येक प्राणी की यह जिम्मेदारी है कि वह प्रकृति के नियमो का पालन करते हुए वायुमडल को स्वच्छ रखे।



अम्लीय वर्षा

पर्यावरण वैज्ञानिको ने विश्व मे वायुमडलीय प्रदूषण की बढती गति के आधार पर यह कहना शुरू कर दिया है कि यदि प्रदूषण पर रोक सम्बन्धी प्रयास कारगर नही हो पाये तो भविष्य मे ससार मे न तो जगल मिलेंगे और न ही पक्षी। जानवरो की जातियाँ नष्ट हो जायेंगी और कूप, झील, नदी समुद्र सूख जायेंगे। उपजाऊ भूमि धीरे-धीरे बजर होती जायेगी, पृथ्वी की उर्वराशक्ति क्षीण होते-होते समाप्त हो जायेगी।

वैज्ञानिको का यह अनुमान काफी कुछ सत्य होता सा प्रतीत हो रहा है। ब्रूसेल्स मे 'योरोपीय पर्यावरण ब्यूरो' के सेमिनार मे ब्यूरो की अध्यक्षा मार्ग्रेट की रिपोर्ट मे कहा गया है कि मध्य यूरोप मे हजारो वर्ग किलोमीटर उर्वर भूमि बडी तेजी से बजर तथा प्राणि-विहीन होती जा रही हैं। यह भूमि इस तरह नष्ट हो रही है जैसे वह युद्ध का मैदान हो। मार्ग्रेट के अनुसार इस विनाश का प्रमुख कारण भूमि पर तेजाबी वर्षा का होना है।

आम तौर पर यह माना जाता है कि सागर या नदियो का पानी गर्म होकर ऊपर पहुँचता है और वहाँ ठडा होकर वर्षा के रूप मे नीचे गिरता है। इस वर्षा के पानी को शुद्ध आसवित जल तक समझा जाता है लेकिन इधर के दस वर्षों मे वर्षा के पानी के परीक्षणो ने बिल्कुल चौंका देने वाले परिणाम दिये हैं। औद्योगिक नगरों के आस-पास के वर्षा के पानी मे अम्लीय प्रभाव पाया गया है। कुछ विकसित देशो में जहाँ-तहाँ यह अम्लीय प्रभाव अधिक है तथा ऐसा पानी जहाँ-

जहाँ गिरा वहाँ-वहाँ जल जीवों का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया। अमेरिका, कनाडा, जर्मनी तथा स्वीडेन में इस अम्लीय वर्षा के पानी की वजह से वहाँ की कुछ नदियों तथा झीलों में रहनेवाले जीव नष्ट हो गये।

परीक्षणों में अम्लीय वर्षा में सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ-साथ नाइट्रिक अम्ल तथा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल भी मिले।

केन्द्रीय मत्स्य की अनुसन्धान केन्द्र पश्चिम बंगाल के डॉ० हेमचन्द्र जोशी ने 'विज्ञान' में अपने लेख में लिखा है कि मृदा में अम्लीय वर्षा की वास्तविक प्रक्रिया अभी सुनिश्चित नहीं हो सकी है लेकिन अम्लीय वर्षा ने मृदा के नाइट्रोजन तथा फास्फोरस पदार्थों को प्रभावित किया है।

पश्चिमी जर्मनी में 'स्प्रूस' के जंगलों के ३० प्रतिशत भाग को अम्लीय वर्षा ने क्षति पहुँचाई है। अम्ल के प्रभाव से स्प्रूस की काँटे जैसी पत्तियों को नष्ट किया। योरोप में एथेन्स, वेनिस, कोलोन तथा क्रोकोव की तमाम इमारतों को तेजाबी बारिश ने प्रभावित किया है।

अमेरिका तथा योरोप में इस तेजाबी वर्षा ने मछलियों की जनजाति को भारी नुकसान पहुँचाया है। हजारों झीलों तथा नदियों में पलने वाली मछलियों के उत्पादन तथा उनकी प्रजनन क्षमता को अम्ल के प्रभाव ने नष्ट कर दिया है।

दक्षिण नार्वे की 'पूरी' झील में १३ हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में अम्लीय वर्षा के फलस्वरूप यहाँ की मत्स्य संपदा पूरी तरह से बरबाद हो गयी है। तथा इसके २० हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र के नष्ट हो जाने का खतरा बन चुका है।

तमाम धातु पदार्थों को अपने में घोलने की क्षमता रखने के कारण

अम्लीय वर्षा जमीन के काफी अन्दर तक अपना प्रभाव डालती है। इसके अतिरिक्त भूमि सतह पर शोषित विषैली व विकिरण सक्रिय धातुओ को भी अम्लीय वर्षा सोख लेती है। ऐसी स्थिति मे जल-जीवो के अस्तित्व को गम्भीर खतरा पैदा हो गया है।



नदियो मे प्रदूषण का परिणाम मछलियो की सामूहिक मौत

विश्व भर के राष्ट्र अम्लीय वर्षा से चिंतित है तथा इस बारे मे स्वीडेन तथा अमेरिका मे सेमिनारो का भी आयोजन किया जा चुका है।

अमेरिका की वर्ल्ड वाच इस्टीट्यूट सस्था की रिपोर्ट के अनुसार दक्षिण भारत के बडे हिस्से दक्षिण पूर्व एशियन, ब्राजील तथा चीन की मिटटी मे अम्लीय वर्षा का प्रभाव मिला है। इससे प्राकृतिक सम्पदा के नष्ट होने का खतरा बढता जा रहा है।

● ● ●

धूल के कण

वातावरण मे धूल के छोटे-छोटे कणो से भी मानव जीवन व स्वास्थ्य बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। वैसे नाक से श्वसन क्रिया के दौरान छोटे-छोटे कण फेफड़ो तक नही पहुँचते लेकिन धूल के अत्यधिक सूक्ष्म कण नाक के रास्ते फेफड़े तक पहुँच जाते हैं। इन सूक्ष्म कणो की माप पाँच माइक्रान से कम होती है। माइक्रान एक मिलीमीटर का एक लाखवाँ हिस्सा होता है। इतना छोटा धूल का कण बडी आसानी से फेफडे मे पहुँच जाता है और रक्त के बहाव को प्रभवित करता है।

आम तौर पर लोग यह मानते हैं कि धूलकणो से शरीर को कोई खास नुकसान नही पहुँचता। लेकिन यह सच नही है। धूल सिर्फ सिलिका जैसा आकार्बनिक तत्व नही है; हमारे वायुमडल मे धूल की शक्ल मे बिना जला हुआ कार्बन, कीटनाशक रसायन, चूना, सीमेट, राख, एसवेस्टस, प्लास्टिक, रबर, बैक्टीरिया तथा और तरह-तरह की सूक्ष्म कणिकाएँ मोजूद हैं।

सिगरेट के धुएँ मे एक माइक्रान के सौवें हिस्से के बराबर साइज की करोडो सूक्ष्म कणिकाएँ होती हैं। वैज्ञानिक खोजो ने प्रमाणित किया है कि एक सिगरेट पीने से जितनी कणिकाएँ हृदय मे पहुँचती हैं उतनी मात्रा हवा मे तीन दिन साँस लेने से पहुँचेगी। यानी सिगरेट के धुएँ मे कणिकाओ का जमाव एक हजार गुना अधिक होता है। सिगरेट के धुएं मे एक तत्व 'बेंजोपायरीन' होता है। यह तत्व कैंसर उत्पन्न करता है।

आम तौर पर एक व्यक्ति प्रति दिन बीस किलोग्राम हवा सांस द्वारा फेफड़ों तक पहुँचाता है। अब इस बात की कल्पना कीजिए कि जो व्यक्ति लगातार धूल भरे वातावरण या खानों या ऐसे उद्योगों में काम करता है जहाँ वातावरण में धुआं तथा छोटी-छोटी कणिकाएँ व्याप्त हैं तो वह अपने फेफड़ों में कितनी धूल पहुँचाता होगा। इन स्थानों पर सांस लेने वाले व्यक्ति के फेफड़ों, श्वांस नली, आँख, गला व त्वचा को रोगग्रस्त होने में मुश्किल से दो या तीन वर्ष ही लगते हैं। कोयला या चूना खानों और सीमेंट के कारखानों में काम करने वाले लोगों को न्यूमोकोनिओसिस व सिलिकोसिस रोग हो जाता है।

प्लास्टिक इंडस्ट्रीज में विनाइल क्लोराइड नामक कार्बनिक पदार्थ की दो माइक्रान साइज की कणिकाएँ शारीरिक बनावट निर्धारित करने वाले 'क्रोमोसोम' को प्रभावित करते हैं। ये कण तपेदिक की बीमारी के कीटाणु भी पैदा करते हैं।

'कीप़ोन' पदार्थ की धूल जिसकी साइज पाँच माइक्रान से कम होती है दिल और दिमाग दोनों पर असर डालते हैं। 'क्लोरोपीन' की धूल जो रबर उद्योगों की देन है, फेफड़ों तथा त्वचा से संपर्क कर कैंसर जैसे असाध्य रोगों को जन्म देती है।

जूट तथा कपड़ा उद्योग में कार्यरत श्रमिक छोटे-छोटे धूल कणों तथा रेशों को अपनी सांस द्वारा हृदय में पहुँचाता रहता है। इससे उन्हें बाइसिनोसिस नामक सांस का रोग कुछ वर्षों में ही अपनी चपेट में ले लेता है।

पर्यावरण में धूल के कण गंभीर रोगों के कीटाणुओं के प्रसार में सहायक होते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि टी० बी० के कीटाणु को फैलाने का काम धूल के छोटे-छोटे कण करते हैं। इनकी अनुपस्थिति में सूर्य का प्रकाश इन कीटाणुओं को नष्ट करने की क्षमता

रखता है। इसी तरह गले के रोग 'फेरिंगाइटिस' के कीटाणु भी धूल के माध्यम से विचरण करते हैं। धूल के कारण चौराहों पर खड़े रहने वाले यातायात पुलिस को 'स्वर भंग' जैसा रोग शीघ्र ही अपनी चपेट में ले लेता है। योरोप आदि देशों में अब तो यातायात सिपाही को 'मास्क' पहनना होता है ताकि वह इस रोग का शिकार न हो सके।



हवा मे धूल के कण

हवा में छोटे-छोटे धूल के कण कहाँ से पहुँचते हैं इस बात की थोड़ी-सी जानकारी जरूरी है। घर के कामकाज में झाड़ू बुहारू करने, टाट झाड़ने, चूल्हा फूंकने, औद्योगिक क्षेत्र मे कच्चा माल उठाने, माल तैयार करने, उत्खनन करने, जंगलों में आग लगने कोयला, तेल, रबर, कार्बन जलाने, परिवहन के धुओं सीमेंट की पिसाई छनाई, चूना पत्थर पीसने ईंटों की पिसाई, रबर व अन्य रासायनिक उद्योगों, ताप

विद्युत, घरो तथा परमाणु विस्फोटों से धूल के सूक्ष्म कण वातावरण मे पहुँच जाते हैं।

वैज्ञानिकों का कहना है कि उपभोक्ता वस्तुओ के प्रति टन उत्पादन के दौरान वायुमंडल मे १२ से ५० किलोग्राम तक सूक्ष्म धूल कण फेंके जाते हैं।

धूल के कणों की साइज के हिसाब से ये हवा में विचरण करते रहते हैं। आमतौर पर छोटे अत्यन्त सूक्ष्म कण एक सौ मीटर की ऊँचाई तक पाये जाते हैं।

धूल कणों का सर्वाधिक कुप्रभाव दिल्ली में पाया गया है जहाँ प्रति घनमीटर हवा में लगभग छः सौ माइक्रोग्राम धूल मौजूद रहती है। दिल्ली के बाद सर्वाधिक धूल प्रदूषित क्षेत्र कानपुर है। वैज्ञानिको का कहना है कि यदि हवा में प्रति घनमीटर ६० या ७० माइक्रोग्राम धूल है तो स्वास्थ्य के लिए खतरा नही है लेकिन जैसे ही यह मात्रा बढ़ती है, खतरे की घण्टी बजा देता है।

औद्योगिक क्षेत्र से फैलने वाले धूल प्रदूषण की रोकथाम के लिए साइक्लोन, इलेक्ट्रोस्टैटिक तथा वेंचुरी छन्ने उपलब्ध तो हैं लेकिन इनका उपयोग नही किया जाता।

हवा में सूक्ष्म धूल के कणों से बचने के लिए वृक्षारोपण को ही वैज्ञानिक सर्वथा उपयुक्त साधन मान रहे हैं। विशेष रूप से गुलमुहर, अशोक, नीम, जामुन, पीपल के पेड़ों को इस प्रदूषण से मुक्ति का उपाय माना गया है।

• • •

शोर : मृत्यु का कारण

हमारे पर्यावरण को शोर या ध्वनि भी बुरी तरह से प्रभावित कर रहे हैं। बढ़ते हुए ध्वनि प्रदूषण से चिंतित वैज्ञानिकों का कहना है कि ध्वनि के अत्यधिक बढ़ने के कारण धीरे-धीरे आदमी की सुनने की शक्ति कम होती जा रही है। वैज्ञानिकों ने तो यहाँ तक चेतावनी दे दी है कि यदि ध्वनि प्रदूषण की गति इसी तरह रही तो इस शताब्दी के अंत तक उत्पन्न होने वाले शिशु या तो बहरे होंगे या उनकी श्रवण शक्ति कम हो जायेगी।

आदमी की सुनने की औसत क्षमता ८० से ८५ डेसीबल तक होती है लेकिन कल-कारखानों की आवाज, लाउडस्पीकर, जहाज, जेट विमान, तेज संगीत, मोटरकारों की आवाज धीरे-धीरे वातावरण में शोर की मात्रा को बढा देते हैं। वातावरण मे शोर की अधिकता तरह-तरह के रोगो को जन्म दे देती है। शोर से सिर दर्द तो आम बात है लेकिन यह रक्तचाप मे वृद्धि तथा हृदय रोगों को भी जन्म देता है। एक सौ बीस डेसीबल तक का शोर आदमी को बेचैन कर देता है तथा सिर दर्द और दिल की धड़कन बढ़ा देता है। यदि शोर की मात्रा १४० डेसीबल से बढ जाये तो आदमी के दिमाग की नसें फट सकती हैं तथा उसका हृदय काम करना बन्द कर सकता है और उसकी मृत्यु तक हो जाती है।

वैज्ञानिकों की आशंका है कि विभिन्न उद्योगों में काम करने वाले कर्मचारियो का ५वां भाग कुछ समय बाद बढ़ते हुए शोर के कारण बहरा हो जायेगा।

भारतवर्ष में ध्वनि से तेज गति वाले विमानो की उडानो, कारखानो की मशीनो, सायरनो, मोटर गाडियो, रेडियो, लाउडस्पीकरों



शोर एक आम चलन

इत्यादि से प्रति १ डेसीबल की रफ्तार से ध्वनि प्रदूषण बढ रहा है। दिल्ली मे शोर का औसत ६५ से ७० डेसीबल तक पहुँच गया है तथा बम्बई मे इसका औसत ७५ से कुछ ज्यादा ही है।

ध्वनि के बढते रहने के कारण विडुचिडापन तनाव तथा गर्भवती महिलाओ को गर्भपात तक हो जाता है।

सुप्रसिद्ध पर्यावरण वैज्ञानिक डॉ० नाडसन ने अपने अनुभवो के आधार पर यह मत व्यक्त किया है कि युध की ही तरह शोर भी मृत्यु का एक कारण है। पर्यावरण मे शोर ी तीव्रता हर दस वर्ष मे दो गुनी बढ रही है। यदि आगे के ४० वर्षों मे शोर इसी तरह बढता रहा तो यह सहारक हो जायेगा।

शोर का सबसे खतरनाक पहलू अनिद्रा को जन्म देना है। इसी तरह बढ़ता हुआ शोर आदमी को गूंगा तक बना सकता है। औद्योगिकीकरण तथा जनसंख्या मे वृद्धि की वजह से शोर के दिनोदिन बढ़ते रहने की संभावना से इकार नहीं किया जा सकता और यदि यही स्थिति लगातार बनी रही तो सन् २ हजार तक अधिकाश शहरी नागरिक बहरे हो जायेंगे।

शोर के बढ़ते प्रभाव पर पश्चिमी वैज्ञानिको ने वृहद अध्ययन किया है। उनकी रिपोर्टों मे इस बात का जिक्र भी है कि लगभग ८० से ९० डेसीबल की ध्वनि व्यक्ति की दृश्य क्षमता मे भी कमी करते हैं। उसकी स्पष्ट देखने की क्षमता घटती जाती है।

वैज्ञानिक डी० ई० ब्रोडवन्ट के अनुसार आदमी की मानसिक स्थिति, लिखने पढ़ने की क्षमता पर भी शोर का बुरा असर पड़ता है।

सन् १९१९ मे टी० बी० के जीवाणुओ की खोज करने वाले वैज्ञानिक राबर्ट कोच ने कहा था कि जिस तरह हैजा तथा टी० बी० के रोग के खिलाफ हमे संघर्ष करना पड़ रहा है कालान्तर मे शोर के विरुद्ध भी हमे ऐसी ही लड़ाई लड़नी पड़ेगी। आज उसकी यह आशंका निर्मूल नही निकली।

पश्चिमी देशो मे शोर को नियंत्रित करने के लिए साउन्ड प्रूफ कमरो का इतजाम किया जा रहा है लेकिन वैज्ञानिको का कहना है कि इससे ध्वनि प्रदूषण मे कोई खास कमी नही आ पायेगी। उनके अनुसार ध्वनि-प्रदूषण के लिए जिम्मेदार तेज रफ्तार से उड़ने वाले विमान हैं जो १५० डेसीबल तक की ध्वनि उत्पन्न करते हैं।

ब्रिटेन के वैज्ञानिको ने शोधो से यह पता लगाया है कि वहां ३० प्रतिशत स्त्रियां तथा २५ प्रतिशत पुरुष स्नायुरोगो से पीड़ित हैं जिसका सीधा सम्बन्ध शोर से है। टोक्यो मे शोर सम्बन्धी शिकायतो

को कानन में स्थान दिया गया है तथा वहाँ पर बच्चो के रोने, चिल्लाने, टेलीविजन तथा रेडियो की ध्वनि पति-पत्नी के झगडे से सम्बन्धित १४ हजार शिकायतें थानो में दर्ज हैं।

ध्वनि प्रदूषण के प्रमुख कारण तथा उनसे प्रभावित होने वाली इकाई इस प्रकार हैं

राकेट उडान	१७०-१८० डेसीवल,
सायरन	१५० डेसीवल
ट्रेन का सायरन	११० डेसीवल
शेर की दहाड	१०५-११० डेसीवल
अखबारी प्रेस	१०० डेसीवल
ट्रक, मोटर सायकिल	९० डेसीवल
एलार्म घडी	७५ डेसीवल
शोरयुक्त सस्थान	८० डेसीवल
तेज लाउडस्पीकर	९० डेसीवल

विदेशो मे रेडियो तथा टेलीविजन को एक निश्चित आवाज मे ही बजाने का निर्देश है। जहाँ कही भी तेज आवाज मे रेडियो चलते हैं उन्हें चेतावनी दी जाती है तथा कभी-कभी आर्थिक दड भी दिया जाता है।



प्रदूषण : बच्चों की मौत

तीसरी दुनिया में बच्चों की असमय मृत्यु भी प्रदूषण की देन है। हालांकि अधिकतर पश्चिमी औद्योगिक देशों में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद बच्चों की मृत्यु दर पर काफी हद तक नियंत्रण प्राप्त किया जा चुका है फिर भी यह स्थिति संतोषजनक नही. कही जा सकती। दूषित जल तथा वायु के प्रभाव के कारण बच्चों की मौत भी हो जाती है तथा कभी-कभी वे मानसिक रूप से कमजोर हो जाते हैं।

वैज्ञानिकों ने बच्चों के मानसिक विकास में गड़बड़ी के लिए जी-तोड़ खोज करके यह निष्कर्ष निकाला है कि नवजात शिशुओं तथा स्कूली बच्चों के स्वास्थ्य पर सीसा या लेड सबसे अधिक खराबी पैदा करने वाला तत्व है।

सीसा या लेड एक ऐसा धातु है जिसका प्रयोग पानी के पाइप, टंकियों में किया जाता है। पीने के पानी में यह सीसा टंकियों तथा पाइपों की वजह से धीरे-धीरे घुलता रहता है। सीसा एक विषैला पदार्थ है जो पीने के पानी के रास्ते शरीर मे पहुंच कर स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाता है।

हवा में भी सीसे की मात्रा घुली है तथा सांस लेने से वह शरीर में पहुंचती है। हवा के विश्लेषण के दौरान पता चला है कि प्रति घन-मीटर हवा मे १·५ माइक्रोग्राम सीसा उपस्थित है। हवा में सीसा पहुंचाने का काम कारखाने तथा आटोमोबाइल (मोटर गाड़ियां)

करती हैं। हवा में उपस्थित सीसे की कुल मात्रा का ८५ प्रतिशत हिस्सा मोटरों के धुओं से यहाँ पहुँचता है।

सीसे के शरीर में प्रवेश की वजह से रक्त में उपस्थित सीसे की मात्रा में बढ़ोत्तरी हो जाती है तथा यह विषैला पदार्थ शारीरिक रक्त संतुलन को बिगाड़ कर रोगों को जन्म देता है। रक्त मे सीसे की आवश्यक मात्रा प्रति मिलीलीटर ०·४ माइक्रोग्राम से लेकर ०·८ माइक्रोग्राम तक होती है।

स्वीडेन में पीने के पानी के माध्यम से 'सीसे का सेवन' करने की वजह से वहाँ के बच्चो का मानसिक विकास अवरुद्ध हो गया है। बच्चों के बाल भी सीसे के जम जाने से रोगग्रस्त हो जाते हैं।

रक्त में सीसे की अधिक मात्रा एक आवश्यक तत्व 'हीम' का बनना रोक देती है। 'हीम' लौहयुक्त तत्व है जो शरीर को मजबूत रखता है। हीम की कमी 'एनीमिया' या रक्त की कमीं के कारण होता है तथा यदि हीम का बनना रुक जाय तो मृत्यु सुनिश्चित होती है।

छापाखानों में सीसे के ढलाई होती है। यहाँ काम करने वाले श्रमिक भी श्वांस के जरिये काफी मात्रा में सीसा शरीर के अंदर ले जाते हैं जो उनके स्वास्थ्य के लिए खतरनाक सिद्ध हुआ है।

पेंसिल उद्योग में कार्यरत बच्चों की भी अल्पायु में मृत्यु इसी सीसे के सेवन से होता है।

प्रदूषण की वजह से प्रति वर्ष लाखों बच्चों की मृत्यु हो जाती है, यह एक प्रमाणित तथ्य है।

बाल मृत्यु के बारे में जेनेवा मे अंतर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य संगठन की ३२ वीं बैठक में चौंकाने वाले आंकड़े दिये गये हैं। बताया गया है कि ५ वर्ष से कम आयु के अनुमानतः १०५ करोड़ बच्चे हर साल

मौत के शिकार हो जाते हैं। हालांकि इसमे कुपोषण से मरने वाले बच्चो की सख्या भी काफी है लेकिन इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि बच्चो की इस मौत मे प्रदूषण की भी समान भागेदारी है।

अक्सर जहरीले खाद्य पदार्थों तथा गाय के दूध मे डी० डी० टी० की मात्रा भी बच्चो के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर डालते हैं। कीटनाशकों के छिडकाव का जहरीला प्रभाव खाद्यान्नो मे चिर समय तक पाया गया है।

बच्चो के दाँत के रोगो के लिए भी पेयजल को जिम्मेदार ठहराया जा रहा है।

कभी-कभी तो प्रदूषण की शिकार माँ के पेट में ही बच्चो की मौत हो जाती है।

पानी मे मौजूद नाइट्रेट की अत्यधिक मात्रा भी बच्चो के रक्त मे कमी का कारण है। तमाम औद्योगिक नगरो मे पर्यावरण प्रदूषण के कारण नवजात शिशु को कई दिनो तक कृत्रिम आक्सीजन पर जीवित रखा जाता है तथा जब चिकित्सक इस बात से सतुष्ट हो जाते हैं कि शिशु को खुली हवा मे भेजा जा सकता है तभी उसे बाहर निकाला जाता है।

• • •

प्रकृति का संरक्षण

वन्य प्राणी इस शब्द का क्या मतलब है ? यह वह शब्द है जिसके जरिये हम अपने जंगलो के शानदार जानवरों का जिक्र करते हैं। यह वह शब्द है जिसके जरिये हम सुन्दर और खुशनुमा चिड़ियो का जिक्र करते हैं जो कि हमारे जीवन को जगमगा देती है।

कभी-कभी यह सोच कर अचरज में पड़ जाते हैं कि ये जंगली जानवर और चिड़ियाँ इन्सान के बारे मे क्या सोचते होगे और अगर उनमे अपने विचार जाहिर करने की ताकत होती तो वे हमारे बारे मे क्या कहते ? मुझे शक है कि अगर वे ऐसा कर सकते होते, तो वे शायद ही हमारी तारीफ करते। हमारी इस तमाम सभ्यता और संस्कृति के बावजूद बहुत सी बातों में इन्सान न सिर्फ अभी भी वहशी और जंगली सा लगता है, बल्कि वह कुछ बातों में तो तथाकथित जंगली जानवरों से भी ज्यादा खतरनाक मालूम होता है। सिद्धान्त-रूप में जीवमात्र को हमारे देश मे जितना महत्व दिया जाता है इतना शायद किसी दूसरे देश में नही दिया जाता है, लेकिन हमारे अब तक के कारनामों से तो यही जाहिर होता है कि हम पशु जगत की उपेक्षा करते हैं।

भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा था

वन्य जीवन को संरक्षण देना बहुत जरूरी हो गया है, क्योकि यह मानव के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए अनिवार्य है। प्रकृति के विभिन्न जीवों के बीच इतना गहरा सम्बन्ध है कि किसी एक के समाप्त हो जाने से देर सबेर दूसरे जीवों के लिए अनेक समस्याएँ

पैदा हो जाती हैं। मानव जाति ने बहुत से जीवों को पहले ही नष्ट कर दिया है। अब हमें उन्हें और अधिक नुकसान नही पहुँचाना चाहिए।

वन्य प्राणी और पं० नेहरू

पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा था यदि देखने और मन बहलाने के लिए ये शानदार पशु-पक्षी न होते तो हमारा जीवन बड़ा नीरस और अनाकर्षक बन जाता। इसलिए अपने बचे-खुचे वन्य प्राणियों के संरक्षण के लिए हमें ज्यादा से ज्यादा अभयवन बनाने को प्रोत्साहन देना चाहिए।

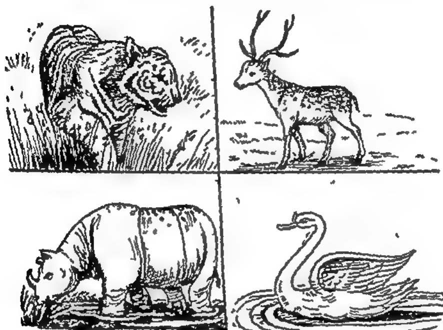
पर्यावरण में अशुद्धता के फलस्वरूप मानव मात्र को ही नही अन्य जीव-जन्तुओं का अस्तित्व भी प्रभावित हुआ है। अनुमान के तौर पर यह कहा जा रहा है कि विश्व में हर वर्ष एक जीव जाति विलुप्त होती जा रही है।

विज्ञान यह मानता है कि प्राणि विशेष का विकास धीरे-धीरे लाखो वर्षों में होता है, लेकिन जब कोई प्राणि जाति लुप्त होती है तो उसका अस्तित्व सदैव के लिए समाप्त हो जाता है। विश्व की कोई भी शक्ति उसका पुनर्निर्माण नही कर सकती, अपने को सर्वशक्ति सम्पन्न समझने वाला विज्ञान भी नही। अपने शौक के लिए या मांस के लिए बड़ी तेजी से वन्य जीवों का शिकार किए जाने से उनकी संख्या मे निरन्तर कमी आती जा रही है।

दूर तक मार करने वाले अस्त्रो की वजह से वन जीवो का खातमा तेजी से किया जाने लगा। मनुष्य की इस क्रूर प्रवृति का परिणाम यह हुआ कि जंगलो से अनेक प्राणियों का नामोनिशान तक मिट गया। सुन्दर वन का दो सीगों वाला गैंडा अब समाप्त हो गया है। शिकारी चीता भी लुप्त हो चुका है। स्वीडेन के प्राणिशास्त्री काई-कुरी लिड्हल के अनुसार इस भूमंडल से अब तक लगभग तीन सौ

जीव जातियां गायब हो चुकी हैं। १६वी शताब्दी तक मारीशस में 'डोडो नामक एक पक्षी पाया जाता था। यह कबूतर की तरह का पक्षी शिकारियो की वजह से अब लुप्त हो गया है।

हिरन के मास-के स्वादिष्ट होने के कारण भारत मे इनका बेरहमी



वन्य प्राणियों का शिकार इन्हें लुप्त कर देगा

से शिकार किया गया। धीरे-धीरे इनकी सख्या मे भी बेहद कमी आ गयी है।

प्रकृति संरक्षण के अतर्राष्ट्रीय सघ आई० यू० सी० एन० की रेड डाटा बुक के अनुसार विश्व भर मे १६३ प्रकार की मछलियाँ, चार सौ तरह के पक्षी, १३८ उभयचर तथा रेंगने वाले सरीसृप प्राणी तथा ३०५ स्तनधारी जीवो का अस्तित्व खतरे में है। यदि इनका सरक्षण ठीक से नहीं किया गया तो ये जातियाँ भी विलुप्त हो जायेंगी। अतर्राष्ट्रीय सघ की पौधा समिति के अनुसार विश्व की २५ हजार

पौधो की जातियाँ भी गभीर सकट से ग्रस्त हैं। रिपोर्ट मे कहा गया है कि शैवाल (काई) जैसी छोटी वनस्पतियो, लाइकन, समुद्री सूक्ष्म पौधे तथा बिना रीढ वाले जीवो की पाँच लाख से लेकर १० लाख तक जातियाँ अगली शती के प्रारभ तक समाप्त हो जायेंगी।

पशु-पक्षियो के शिकार की वजह से प्राकृतिक सतुलन बिगड जाएगा। प्रकृति मे व्याप्त तरह तरह के जीवो का आहार दूसरे जीव ही हैं। किसी एक जीव की हत्या सतुलन को निश्चित रूप से प्रभावित करेगी। पक्षियो तथा जानवरो की हत्या से कृषि उत्पादन पर भी प्रतिकूल असर पड रहा है।

भारतीय वनो मे सिंहो के अंधाधुंध शिकार से उनकी संख्या निरन्तर कम होती चली गयी। राजा-महाराजाओ ने शेरो को मार-कर उन्हे अपने दरबार या ड्राइग रूम मे टाँग दिया। आज शेरो की सख्या ४० हजार से घट कर महज ढाई हजार रह गयी है।

वनजातियो के तेजी से समाप्त होने पर पहली बार सन् १९१२ मे लोग चिंतित हुए। इनकी वजह से एशियाई सिंह को गीर वनो मे सरक्षण प्रदान किया गया। वहाँ पर उस समय सिर्फ १२ सिंह जीवित बचे थे सरक्षण देने की वजह से अब उनकी सख्या बढ कर तीन सौ के आसपास पहुँच गयी है।

पर्यावरण वैज्ञानिको के अनुसार भारतीय सोहन चिड़िया, सुनहले गरुड, गुलाबसिरी हंसक (बत्तख), काश्मीरी बारहसिंघे, कस्तूरी मृग, कृष्णसार तथा जगली भैंसो की सख्या मे भी काफी गिरावट आयी है।

आम व्यक्ति जानवरो को खतरनाक समझ कर उन्हें समाप्त कर देना चाहता है लेकिन कभी-कभी ये खतरनाक समझे जाने वाले जीव बेहद लाभदायक भी होते हैं। समुद्री शार्क से, जिसे बेहद खतरनाक मछली समझा जाना है, डायबिटीज (मधुमेह) के रोगियों के लिए इन्सुलिन दवा निकाली जाती है।

जल प्रदूषण के कारण राजहंसो की जातियाँ भी खतरे मे पड़ गयी हैं। इसी तरह श्वेत-श्याम रंग का एक विशालकाय पक्षी जिपेट्स बार्बेट (गिद्ध) भी लुप्त हो चुका है। हालांकि इसके कुछ जोडो को योरोप के चिड़ियाघर में रख कर इसकी संख्या बढाने की कोशिश की जायेगी। सोवियत सघ मे भी इस जाति का एक जोडा सरक्षित किया गया है।

उत्तरी गोलार्ध में पाये जाने वाले ध्रुवीय भालू (यूरेसस मेरिटिमस) के शिकार पर कनाडा, डेनमार्क, सोवियत सघ, अमेरिका, नार्वे ने सयुक्त समझौते में रोक लगा दी है।

शिकारियो की क्रूरता के शिकार घडियाल भी हुए है। इनकी भी गिनी-चुनी संख्या बची रह गयी है।

रीवा के जंगलों मे पाया जाने वाला सफेद शेर भी समाप्त प्राय है। इसके एक-दो नमूने चिडियाघरों में सुरक्षित रखे गये हैं। इसी तरह सफेद हाथी, सफेद कौवे की प्रजाति भी गायब हो रही है।

वन्य जातियो के जीवित रहने की संभावना इस बात पर निर्भर है कि जाति विशेष के जीवित रहने के अनुकूल वातावरण है या नही। कुछ वन्य जातियाँ तो हिंसक या भक्षक जानवरो की अधिक सक्रियता का शिकार हो गयी लेकिन इनका सबसे ज्यादा शिकार मनुष्य ने ही किया। तस्कर शिकारियों ने जानवरों की खालों के अतर्राष्ट्रीय मूल्य को देख कर उनका बेतहाशा शिकार किया।

सन् १९५२ की राष्ट्रीय वन नीति मे वन्य जीवों की तथा विशेष रूप से दुर्लभ जातियो की सुरक्षा पर जोर दिया गया। इण्डियन वाइल्ड लाइफ बोर्ड बनाया गया तथा १९६२ मे इसका विस्तार किया गया। यह बोर्ड समन्वित विधि, मौसम तथा प्रदेश के सन्दर्भ मे वन्य जीवों की सुरक्षा के लिए शिकार पर रोक, विशेष प्राणियो को सुरक्षित घोषित करना, पशु-पक्षियो के उत्पादो के निर्यात पर

प्रतिबंध लगाने, राष्ट्रीय उपवन, अभयारण्य और प्राणिकीय उद्यान स्थापित करने के लिए सरकार को अपनी राय देता है। सरकार द्वारा जगह-जगह अभयारण्य तथा पक्षी विहार बनाये गये हैं।

उत्तर प्रदेश के विभिन्न अचलो मे चार राष्ट्रीय उद्यानो तथा १२ पशु विहारो की स्थापना की गयी है।

लुप्त प्राय कस्तूरी मृग के सरक्षण तथा विकास के लिए गोपेश्वर के काचुला खारक नामक स्थान पर एक कस्तूरी मृग प्रजनन केन्द्र स्थापित किया गया है।

लखनऊ जनपद के कुकरैल तथा बहराइच जनपद के कतरनियाँ घाट में घडियाल तथा मगर प्रजाति के विकास के लिए प्रजनन केन्द्रो की स्थापना की गयी है।

घडियाल तथा मगर प्रजनन के क्षेत्र मे यहाँ पर अब तक १ हजार ६६५ घडियाल तथा १३४ मगर के बच्चे प्राप्त हो चुके हैं। ६७० घडियाल के बच्चो को चम्बल तथा गेरुआ नदियो मे छोडा जा चुका है जो उनके प्राकृतिक आवास स्थल हैं।

इसके अतिरिक्त कुकरैल मे टाइगर पशु विहार, कार्बेट पार्क व्याघ्र परिरक्षण दुधवा राष्ट्रीय पार्क का विकास आदि कार्यक्रम भी चलाया गया है। लखनऊ, कानपुर के बीच नवाबगज मे भी एक अभयारण्य बनाया गया है।

वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फड की स्थापना भी १९६१ मे स्विटजरलैंड मे की गयी जिसका उद्देश्य जीवधारियो को सरक्षण प्रदान करना है।

भारतवर्ष मे विभिन्न परियोजनाओ तथा आखेटो के कारण हजारो एकड जगल उजड गये तथा लगभग २ हजार वर्षों मे एक सौ से अधिक जन्तुओ तथा डेढ़ सौ पक्षियो की जातियाँ समाप्त हो गयी है। भारतीय वन्य जीव सरक्षण नीति जो वर्ष १९७२ मे बनायी गयी के अतर्गत ऐसी ६ सौ जीवो की प्रजातियो के सरक्षण की योजना है जो सकट ग्रस्त है।

बाघो के सरक्षण तथा विकास के लिए भारत सरकार ने प्रोजेक्ट टाइगर योजना का आरभ १९७३ मे किया। विश्व मे बाघो के आखेट के कारण उनकी सख्या १ लाख से घटकर ५ हजार रह गयी। शेखी बघारने के लिए बाघो का शिकार कर नये नये कीर्तिमानो की होड ने इस जाति के अस्तित्व को खतरा पैदा किया। भारत सरकार ने सन १९७० मे बाघ के शिकार पर प्रनिबध लगाया तथा इसका उल्लघन करने पर दड की व्यवस्था की गयी।

इस प्रक्रिया का जोरदार असर हुआ तथा बाघो की सख्या १९७२ मे १ हजार ८२७ से बढ कर १९७९ मे ३ हजार १५ हो गयी। इस समय देश मे बाघो के सरक्षण के लिए ११ अभयारण्य हैं। इन जगलो का कुल वन क्षेत्र १५ हजार ७९० किलोमीटर है। ये अरण्य है, पश्चिम बगाल मे सुन्दर वन आसाम मे मानस, उ० प्र० मे कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान राजस्थान मे रणथम्भौर तथा सरिस्का, मध्य प्रदेश मे कान्हा, बिहार मे पलामू, उडीसा मे सिमलीपाल कर्नाटक मे बादीपुर महाराष्ट्र मे मेलघाट, केरल मे पेरियार।

इसके अतिरिक्त मध्य प्रदेश मे बान्धवगढ को भी अभयारण्य बनाया जा रहा है।

राजस्थान मे पक्षियो के लिए भरतपुर तथा चिकारा के लिए मध्य प्रदेश मे शिवपुरी राष्ट्रीय प्राणि उद्यान बनाया गया है।

केरल मे हाथी तथा गौर के लिए पेरियार म, गैडे के लिए असम म काजीरगा तथा बगाल मे जलदापाडा का भी उल्लेख किया जा सकता है।

उत्तर प्रदेश मे राजा जी पशु विहार सहारनपुर, बाहरी शेरो के लिए चद्रप्रभा अरण्य भी दर्शनीय हैं।

इसके अतिरिक्त तमाम दुर्लभ पक्षियो को देश के विभिन्न चिडिया-

घरों मे रखा गया है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह प्रयास जारी है कि पक्षियों तथा जीव-जन्तुओं को उन्मुक्त छोड दिया जाय ताकि ये स्वतत्र होकर वन्य प्राणि सम्पदा मे वृद्धि करें, इससे प्राकृतिक संतुलन फिर से बन सकेगा, ऐसा विश्वास किया जाता है।

• • •

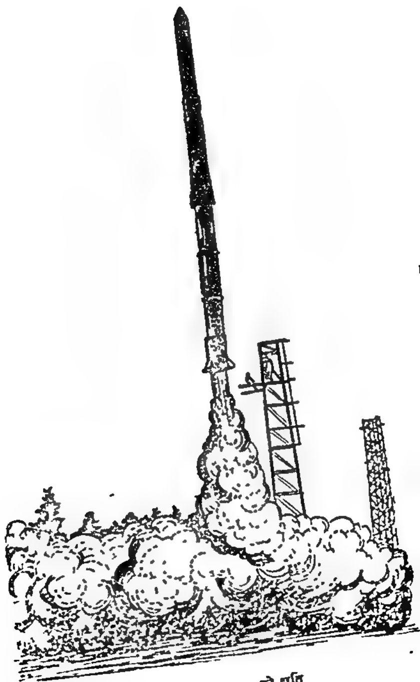
पश्चिम में प्रदूषण

प्रदूषण के फैलाने में सर्वाधिक जिम्मेदारी किसकी है? यह एक अहम् सवाल है। जाहिर है जहां उद्योग-धंधे ज्यादा होंगे, जहां असीमित परिवहन होगा, जो विमानो, राकेटो तथा जेटों की उड़ानें ज्यादा भरेगा, जहां परमाणु तथा आणविक भट्टियां ज्यादा होंगी वही देश पर्यावरण को अधिक प्रभावित कर रहे होंगे। जैसा कि विदित ही है, हम भूभागो पर तो अपना स्वामित्व बनाये हुए हैं लेकिन वायुमंडल पर सबका समान अधिकार है। यदि एक जगह एक देश से घातक किरणें, प्रदूषित गैसें वायुमंडल में जायेंगी तो सम्पूर्ण विश्व का वायुमडल प्रभावित हुए बिना नही रह सकता।

यह कतई सभव नहीं कि अमरीका का वायुमडल दूषित होता रहे लेकिन उसके आस पास इसका प्रभाव न पड़े।

प्रोफेसर गुन्नार मर्डल की मान्यता है कि पश्चिमी राष्ट्र अपने जीवन यापन के स्तर को ऊँचा बनाने के लिए प्राकृतिक ससाधनो का अधाधुध दोहन कर रहे हैं।

यह भी एक तथ्य है कि अमेरिका सम्पूर्ण ऊर्जा का लगभग एक तिहाई भाग इस्तेमाल करता है जबकि इससे तीन गुनी जनसख्या वाला भारत सम्पूर्ण विश्व की कुल ऊर्जा का सिर्फ एक प्रतिशत हिस्सा ही इस्तेमाल करता है। अमरीका के नागरिक इस दृष्टि से भूमंडल के पर्यावरण को किस हद तक प्रभावित कर रहे हैं, इसका अदाज सहज ही लगाया जा सकता है।



राकेटों से मोजोर परत को दाति

राकेट तथा मशीनो के ऊपर निर्भर पश्चिमी देशो ने प्राकृतिक सपदा के दोहन का जो रुख अपना रखा है उसका परिणाम अविकिसित देशो को भी भुगतना पड रहा है।

" प्राकृतिक ससाधनों के असमान उपभोग की वजह से ही पर्यावरण बुरी तरह बर्बाद हो रहा है। सम्पन्न देशो द्वारा उत्पन्न किया गया प्रदूषण गरीब राष्ट्रो की मजबूरी वन जाता है। उसका वातावरण दूसरे मुल्क विषाक्त करते हैं और वह इसे बर्दाश्त करता रहता है।

ब्राजील के माइगेल ओजोरियो का कहना है कि विश्व भर में जितना पर्यावरण प्रदूषण है वह विकसित राष्ट्रो की देन है। यदि उनकी प्रदूषण की भागीदारी निकाल दी जाय तो प्रदूषण कोई समस्या ही नही है। वस्तुत अल्प विकसित राष्ट्रो द्वारा किया गया प्रदूषण, विकसित राष्ट्रो के द्वारा किए गए प्रदूषण की तुलना मे नगण्य ही है।

पश्चिमी देशो ने ही सभ्यता तथा विकास के नाम पर वायुमडल को अपनी मिल्कियत मान उस पर लगातार अनेकानेक परीक्षण किये। सुपरसोनिक जेट विमानो, राकेटो से निकलने वाली गैसो तथा जलने वाले ईंधन ने जहाँ ओजोन पट्टी को प्रभावित किया वही ध्वनि तथा वायु प्रदूषण को भी बढाया है।

अब तो न्यूट्रान तथा हाइड्रोजन बमो की बात चल रही है। परमाणु परीक्षण तथा रेडियोधर्मी तत्वो का दौर चल रहा है तमाम ऐसे परीक्षण किये जा रहे हैं जो सम्पूर्ण सृष्टि के विनाश की क्षमता रखता है। स्पर्धा के इस दौर मे प्रकृति का स्वरूप किस हद तक बिगड जायेगा इसका अनुमान लगाना भी कठिन ही है।

मजे की बात तो यह है कि तमाम समृद्ध राष्ट्रो ने पर्यावरण सम्बन्धी कानून बनाये हैं। पर्यावरण सरक्षण हेतु गोष्ठियाँ, अत र्राष्ट्रीय बैठको, सेमिनारो का आयोजन किया जाता है लेकिन दूसरी ओर सारी मानवता के विनाश का ताना बाना भी बुना जा रहा है।

नये नये तरह के अस्त्र शस्त्रो, जहरीली गैसो से भरे हुए हथियारो के निर्माण तथा उनके प्रयोग का दौर भी चल रहा है। शाति के नाम पर किये जा रहे प्रयासो तथा वैज्ञानिक प्रयोगो की आड मे विनाश का खेल जारी है। अखबारो मे सुर्खियां रहती हैं कि अमुक राष्ट्र जब चाहे पूरे वायुमडल को जहरीली गैसो से भर कर सम्पूर्ण सृष्टि को नष्ट कर सकता है।

अपना प्रभुत्व स्थापित करने के उद्देश्य से सप्रभुराष्ट्र छोटे राष्ट्रो की मानव तथा उनकी प्राकृतिक सपदा को नष्ट करने पर तुले हुए हैं। प्राकृतिक तेल के कुओ पर बमबारी कर क्या पर्यावरण के साथ खिलवाड नही किया जा रहा। कुओ, तालाबों तथा नदियो को दूषित कर मनुष्य मनुष्य को अपनी दासता स्वीकार करने को बाध्य कर रहा है। यह विनाश का क्रम बद नही हो रहा है। जब तक हम स्वय अपनी समृद्धि तथा शक्ति सम्पन्न होने की होड को तिलाजलि नही दे देंगे, अतर्राष्ट्रीय कानूनो को बना कर पर्यावरण को दूषित होने से कदापि नही बचा सकते।



दूषित जल के कुप्रभाव

औद्योगिक संस्थानों से निकला कूड़ा करकट तथा रासायनिक पदार्थ, सीवर का गंदा पानी, मल-मूत्र, नदियों में मिलाये जाने से जल प्रदूषण अपनी चरम सीमा पर पहुँचता जा रहा है। आरोग्य-दायिनी गंगा का जल इतना दूषित हो गया है कि कई जगह पर उसका पानी सेवन के योग्य नहीं रह गया।

पृथ्वी का अधिकांश भाग जल से घिरा है। इसके २/३ भाग में पानी ही पानी है, लेकिन पानी जिसे हम पेयजल कहते हैं केवल ० ८ प्रतिशत ही हमें उपलब्ध है।

भारत की नदियों के प्रदूषण का ८५ प्रतिशत हिस्सा कूड़ा-कचरा तथा गन्दे पानी के इसमें मिलने के कारण ही है। नदियों में प्रतिदिन ४१ हजार टन गन्दा पदार्थ मिलाया जाता है। दिल्ली में प्रतिदिन ३ लाख ३० हजार किलोलीटर गन्दा पानी व मल-मूत्र यमुना नदी में मिलाया जाता है।

शिव की नगरी काशी जो कभी मोक्षदायिनी कही जाती थी इसी काशी गंगा में प्रतिदिन २० हजार गैलन से अधिक गन्दा पानी डाला जाता है।

राष्ट्रीय पर्यावरण संरक्षण संस्थान के अनुसार यदि प्रदूषण की यही रफ्तार जारी रही तो गंगा के कुल १ हजार ५ सौ ५० मील लम्बे क्षेत्र का जल अगले ५० वर्षों में उपयोग के काबिल नहीं रह पायेगा।

भारत में १४५ ऐसे बड़े नगर जिनकी आबादी १० लाख के

लगभग है अपना दूषित जल गंगा, गोदावरी, घाघरा, कृष्णा, कावेरी, ब्रह्मपुत्र, महानदी, ताप्ती, नर्मदा तथा साबरमती आदि नदियों में



नदियों में गिरते नाले

लगातार उँडेल रहे हैं। गंगा नदी में लगभग १६ हजार नदी-नालों से जल प्रदूषण हो रहा है।

विभिन्न कारखानों द्वारा गंगा किस सीमा तक प्रदूषण का शिकार होती है इसका अध्ययन वैज्ञानिकों ने किया है। एक रिपोर्ट के अनुसार गर्मी में ३०० क्यूसेक पानी का २०० क्यूसेक भाग दूषित मैला तथा औद्योगिक व्यर्थ पदार्थ है ?

गंगा का जल यमुना के प्रदूषण को भी अपने में समेटे हुए है। हरियाणा, देहरादून, सोनीपत, पानीपत तथा दिल्ली का प्रदूषित यमुना जल इलाहाबाद में गंगा में समाहित हो जाता है। दिल्ली में यमुना के पानी को वैज्ञानिकों ने गटर के पानी जैसा मान लिया है।

फरीदाबाद, बल्लभगढ़, पलवल, मथुरा व आगरा के चमड़े के उद्योग द्वारा हजारो गैलन रासायनिक पदार्थ प्रति घटे यमुना के जल मे गिराया जाता है। इससे पानी में सल्फर के जहरीले तत्वो की बढोत्तरी होती जा रही है ?

गगोत्री से तो ग गा का जल निर्मल ही मिलता है लेकिन ऋषिकेश से इसमे गन्दगी मिलने लगती है।

हिमालय से निकलने वाली यह पवित्र नदी १५ करोड मानवो तथा २१ करोड पशुओ को पेयजल देती है। गगा के किनारे के नगरो से लगभग १ लाख ५० हजार औद्योगिक संस्थानो के अवशिष्ट इससे मिलते हैं तथा विभिन्न हानिकारक तत्व इसमे मिलाते है।

विभिन्न नदियों में प्रदूषणकारी प्रमुख तत्व विषैले रसायन, खनिज लोहा, सीसा बेरियम, फास्फेट, क्रोमियम, साइनाइड तथा पारा है। भारतीय पर्यावरण मे प्रतिवर्ष १८० टन पारे का विसर्जन होता है जिसमें से अधिकाश हिस्सा कास्टिक सोडा तथा क्लोरीन उत्पन्न करने वाले उद्योगों से आता है। यह मात्रा सीधे ही नदियो मे गिरा दी जाती है। पारे के इस मिश्रण से मछलियो की सख्या दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है तथा ये रोगग्रस्त होकर मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए भी खतरनाक सिद्ध हो रही हैं।

राजस्थान के तमाम भागों मे नारू नामक रोग लगभग २ लाख लोगो को प्रभावित किए हुए है। इसका प्रमुख कारण विषाक्त जल का सेवन ही है।

कलकत्ता मे हुगली नदी के किनारे चर्म शोधन, वस्त्र उद्योग, कागज व लुगदी, शराब आदि बनाने के लगभग १६० कारखाने हैं जो पानी को दूषित करने का काम कर रहे हैं।

बिहार की दामोदर नदी भी प्रदूषण की शिकार हो चुकी है

इसके किनारों पर स्थापित सिन्दरी का उर्वरक कारखाना, सुपर फास्फेट फैक्टरी, बोकारो ताप बिजलीघर से दूषित पदार्थ प्रतिदिन पानी में मिलते रहते हैं। उर्वरक कारखानों से अमोनिया, नेफ्था, फिनाल, सायनाइड आदि दामोदर नदी में मिल कर उसे कलुषित कर रहे हैं।

मध्य प्रदेश में ब्रजराज नगर में स्थित ओरियन्ट पेपर मिल तथा शहडोल में कागज तथा गन्धक के तेजाब, रसायन, सीसे के कारखाने के व्यर्थ पदार्थ जल प्रदूषण में अपनी हिस्सेदारी रखते हैं।

श्रीनगर का ५१ हजार किलोलीटर मात्रा मे गन्दा पानी प्रतिदिन झेलम नदी में गिरता है। बिहार में दामोदर नदी का जल वहाँ पर उपस्थित बोकारो स्टील प्लांट के अवशिष्ट की वजह से विषाक्त हो रहा है।

दूषित जल के सेवन से हर वर्ष लाखो लोग हैजे तथा पीलिया के शिकार हो जाते हैं। विभिन्न नदियों मे शवों के बहाये जाने से भी पानी मे विषाणु तथा विभिन्न रोगों के कीटाणु तेजी से पनपते हैं।

जल प्रदूषण से प्रतिवर्ष लगभग डेढ़ करोड़ व्यक्ति काल कवलित हो जाते हैं। विश्व में लगभग १ अरब लोग प्रदूषित पानी को पीने के लिए मजबूर हैं।

मनुष्य प्रतिदिन ९०० करोड़ लीटर स्वच्छ जल प्रयोग में लाता है तथा प्रतिदिन उपयोग के बाद ७५० करोड़ लीटर गन्दा पानी जल स्रोतों में वापस कर दिया जाता है।

भारतीय सागर तटों में प्रतिदिन ५ बिलियन गैलन पानी गिरता है। इसके अतिरिक्त लगभग १·५ लाख टन गन्दा पदार्थ इसमें आता है। इस गन्दगी तथा रसायनों के कारण यहाँ वनस्पतियो तथा मछलियों में ५० प्रतिशत तक की कमी हो गयी है। बन्दरगाहों, खाड़ियो, तटों एवं समुद्री सतह पर औद्योगिक कचरा गन्दगी तथा

तेल आदि के लगातार फेंके जाने से पानी के परिशोधन का काम करने वाले जीवो की मृत्यु हो रही है।

इधर के एक-दो वर्षों मे लगभग हर शहर पीलिया के प्रकोप से ग्रस्त हो गया है। पीलिया के जीवाणु पेयजल मे विद्यमान हैं तथा इनका कोई विशेष उपचार भी नही है।

कारखानो से निकले अवशिष्टो एव अधिक तापक्रम वाले पदार्थों को नदियो मे गिराने की वजह से पानी मे मौजूद आक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है तथा अधिक तापक्रम से जल जीवियो की मृत्यु तक हो जाती है।

विभिन्न रसायनो के कारण जलीय जीवो की प्रजनन क्षमता भी नष्ट हो जाती है।

दूषित पानी के प्रयोग करने की वजह से विकासशील देशो मे प्रतिवर्ष ६० लाख बच्चे डायरिया से मर जाते हैं। कुल १ करोड़ ८० लाख व्यक्ति भी इससे ग्रस्त होकर काल के गाल मे समा जाते हैं।

दूषित जल की वजह से ही हर समय ५० करोड़ व्यक्ति आँख के रोहो से ग्रस्त होकर प्राय अधे हो जाते हैं।

विकासशील देशो मे अधिकाश लोग पेट के केचुओ के शिकार हैं। ७० देशो के लगभग २० करोड़ व्यक्ति 'सिस्टोसामियासिस' रोग के शिकार पाये गये हैं।

रासायनिकों से होने वाले प्रदूषण के कारण ८० प्रतिशत कैंसर जैसी बीमारी पायी गयी हैं।

शहरों व पम्पो की बढती हुई सख्या से नदियो का जलस्तर कम होता जा रहा है। यह भी जल प्रदूषण को प्रभावी कर रहे हैं।

जल प्रदूषण के लिए जिम्मेदार औद्योगिक प्रतिष्ठानों की विभिन्न प्रदेशो मे स्थिति इस प्रकार है—

पश्चिम बगाल २००, मध्य प्रदेश २७७, गुजरात ५०८

प्रदेश ३००, कर्नाटक-२२४, बिहार १६१, केरल १६५, राजस्थान १५६, उत्तर प्रदेश १८२, पंजाब १४५, हरियाणा १४५, असम ४२, हिमांचल प्रदेश ३०, जम्मू कश्मीर २८, तथा अन्य १५० ।

प्रदूषण नियमों के अंतर्गत सरकारों द्वारा २४५ औद्योगिक संस्थानों के खिलाफ कार्रवाई की गयी है?

जल तथा वायु प्रदूषण पर स्वर्गीया प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा था—

एक समय था जब जल तथा वायु सभी के लिए मुफ्त उपलब्ध थे, लेकिन अब उनकी भी कीमत है। हमें उनका मूल्य चुकाना पड़ता है ……या तो जल तथा वायु को प्रदूषण रहित बनाने का मूल्य अथवा अपने स्वास्थ्य मे गिरावट तथा शांतिपूर्ण जीवन में बाधा के रूप में चुकाया गया मूल्य।

प्रदूषित जल के छिड़काव की वजह से भूमि की उर्वरा शक्ति पर भी प्रतिकूल असर पड़ रहा है। फसलों को जीवाणु तो प्रभावित कर ही रहे हैं, उनकी उत्पादन क्षमता भी घट रही है। मृदा मे मौजूद रासायनिक तत्वों का क्षरण हो रहा है। तथा कीटनाशकों के छिड़काव से फसलों तथा जमीन के अंदर रिस कर जाने वाला पानी भी विषैला हो रहा है।

भारत सरकार का प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड इस दिशा में अत्यन्त क्रियाशील है। जगह-जगह प्रदूषण नियन्त्रण केन्द्रों की स्थापना की गयी है तथा मृदा के संरक्षण के लिए हर सम्भव कोशिश भी की जा रही है।

• • •

गंगा प्रदूषण

गगा के अमृत रूपी जल की मान्यता अब लगभग समाप्त होती जा रही है। गंगा को वेदो और पुराणो ने आरोग्यदायिनी कहा था लेकिन अब गगा का पानी रोगदायक होता जा रहा है, ऐसा आखिर क्यो है ? एक महत्वपूर्ण सवाल है यह, जो जन सामान्य को कुछ सोचने के लिए मजबूर कर देती है।

प्रदूषित जल के कारण भारत के नदियो की स्थिति दिन पर दिन बिगडती ही जा रही है मार्च १९८१ मे पहली बार गोमती में मछलियो की सामूहिक मौत हुई। उत्तर प्रदेश जल प्रदूषण नियत्रण एवं निवारण बोर्ड ने इस घटना के कारण गोमती के पानी की जाँच के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि उक्त दुर्घटना डालीगज स्थित मोहन मीकिन्स डिस्टिलरी के अत्यधिक दूषित उत्प्रवाह के कारण हुई थी। न्यायालय ने उक्त सस्थान को निर्देश दिया कि उत्प्रवाह का शोधन करने के बाद ही उसे पानी मे प्रवाहित किया जाय। लेकिन बिना शोधन के ही उत्प्रवाह गोमती मे प्रवाहित होता रहा जिसका परिणाम यह हुआ कि मार्च ८३ मे गोमती मे दुबारा मछलियो की सामूहिक मौत हो गयी। यह क्रम अभी भी जारी है। यद्यपि सरकार ने इस दिशा मे ठोस कदम उठाये हैं।

गगा नदी मे इस कदर प्रदूषण व्याप्त हो रहा है कि इसके सेवन से भावी सतति के विकलाग होने की सभावना तक व्यक्त की जाने लगी है।

भारत में पचास से साठ प्रतिशत लोग प्रदूषित पानी के कारण

बीमार होते हैं और तीस से चालीस प्रतिशत रोगी प्रदूषित जल द्वारा उत्पन्न रोगो के कारण मर जाते हैं। प्रदूषित जल से विशेष रूप से हैजा, मोतीझला पोलियो पीलिया डायरिया जैसे रोग उत्पन्न होते हैं। प्रति वर्ष लाखो लोग फाइलेरिएसिस नामक भयानक बीमारी के शिकार दूषित जल के सेवन के ही कारण हो जाते हैं।

वैज्ञानिको ने विस्तृत अध्ययन के दौरान यह निष्कर्ष निकाला है कि पिछले ४० वर्षों के दौरान तमाम स्थानो पर मृदु जल धीरे धीरे कठोर जल मे बदल गया तथा ऐसे स्थानो पर हृदय रोग तथा मृत्यु दर मे बढोतरी हो गयी।

घरेलू मल-मूत्र के निपटान के लिए हमारे देश मे कोई सतोषप्रद व्यवस्था नही की जा सकी है। देश के कुछ गिने-चुने शहरो मे ही प्राथमिक उपचार सयन्त्र लगाये गये हैं। कही कही तो महज द्वितीयक या आंशिक द्वितीयक सयन्त्रो से ही छुट्टी पा ली गयी है। कानपुर, बगलोर तथा अहमदाबाद में तो किसी तरह के वाहितमल उपचार सयन्त्र को नही लगाया जा सका है।

जनसख्या के १९७१ के आंकड़ो के अनुसार देश की ८० प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रो मे रहती है। ये लोग कुओ, तालाबो, बावड़ियों तथा नदियो का जल सेवन करते हैं। इन स्रोतों से प्राप्त जल अनेक प्रकार के हानिकारक जीवाणुओ से प्रदूषित हैं। खुले कुओ का पानी सर्वाधिक प्रदूषण से ग्रस्त है, इसलिए इसमे कोई सदेह नही कि भारत मे प्रति एक लाख व्यक्तियो मे से ३६० व्यक्ति आन्त्र रोगो के कारण मरते हैं। यह सिद्ध हो चुका है कि खेतिहर मजदूरो के नियंत्रित दल मे से १३% आन्त्रशोथ-सक्रमण, २३.९% अरक्तता तथा २९% कीट सक्रमण से प्रभावित रहते हैं।

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रो० जान वर्क ने लिखा है कि

सन् १८४० ई० और १८५० ई० में यूरोप में फैले हैजे का मुख्य कारण नदियों का प्रदूषित होना था।

उदयपुर पर्यावरण दल द्वारा आयोजित पर्यावरण सुधार शिविर में जल प्रदूषण विशेषज्ञों ने वहाँ के पेयजल का वैज्ञानिक परीक्षण किया तथा परीक्षण के बाद यह सिद्ध किया गया कि पिछोला झील तथा फतहसागर दोनों झीलों के चारों ओर बनी बस्तियों के लोग अपने नालों और पाइप लाइनों से मल-मूत्र झीलों में डाल कर पानी को दूषित करते हैं। इसके अतिरिक्त दोनों झीलों के बीच और किनारे पर बने आधुनिक उच्च श्रेणी के होटलों के विदेशी पर्यटकों का मल-मूत्र भी इन्हीं झीलों में गिरता है। शहर की ७५ प्रतिशत जनता को पीने के लिए मल-मूत्र मिश्रित यही पानी पेयजल के रूप में वितरित किया जाता है। एक अन्य परीक्षण के अनुसार ३६ लाख क्यूबिक मीटर दूषित मलवा प्रति वर्ष पिछोहा झील तथा फतह सागर में डाला जाता है जिससे झील की गहराई प्रतिवर्ष लगभग ४ इंच कम हो रही है।

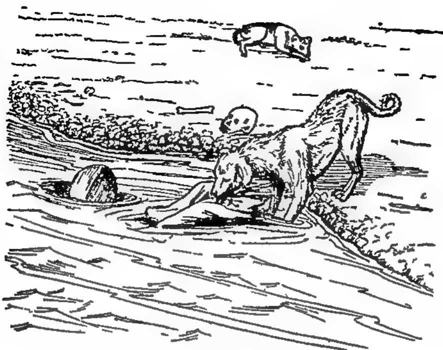
उत्तर प्रदेश की लगभग सभी नदियाँ इस समय जनता को रोगी बना देने की भयावह स्थिति में पहुँच चुकी हैं। सर्वाधिक प्रदूषण की शिकार यमुना, गंगा तथा गोमती ही हैं। नैनीताल की मुख्य झील जो पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र थी, प्रदूषण के कारण अब सूख चुकी है। ऋषिकेश से ही गंगा में प्रदूषण शुरू हो जाता है लेकिन कानपुर पहुँच कर यह अपनी चरम स्थिति पर पहुँच जाता है। कानपुर शहर का लगभग २० करोड़ लीटर गंदा सीवर का पानी १३ बड़े नालों से प्रतिदिन गंगा में गिराया जाता है। चर्म उद्योग के ६० कारखानों का खराब पदार्थ (वेस्ट मैटीरियल) सीधे गंगा में जाता है। इस अशुद्ध जल में क्रोमियम जैसी खतरनाक धातु गंगा में मिल जाती है जिससे चर्म रोग तथा कैंसर जैसे खतरनाक रोग फैलते है।

इलाहाबाद में यमुना नदी में अक्सर १० या १२ शव बहते मिल जाते हैं। बलुआघाट स्नानघाट के पास ही एक धोबी घाट है तथा इसी के साथ चाचर नाले का गंदा पानी हरहराता हुआ यमुना को और अधिक पवित्र बनाने मे लगा है। चाचरनाले के अलावा करेलाबाग में भी तीन गंदे नाले यमुना मे मिलते हैं जिनसे प्रतिदिन लाखो गैलन प्रदूषित पानी यमुना मे मिल जाता है। करेलाबाग से ही नगर में पेयजल की आपूर्ति होती है। करेलाबाग मे जो नाले यमुना में गिरते हैं वे सदियाबाद क्षेत्र मे स्थित बूचड़खाने की गंदगी भी अपने में समेटे रहते हैं।



नदियों मे शवों का बहाना एक परम्परा है

इसी तरह किले के पास लावारिस लाशें मिंटोपार्क से यमुना मे फेंकी जाती है। ये सड़ी लाशें यमुना से गंगा में बह जाती हैं तथा गंगा मे भीषण जल-प्रदूषण उत्पन्न कर देती हैं।



नदी से बहते शव को घसीटता एक कुत्ता

वाराणसी में हर साल मणिकर्णिका घाट तथा हरिश्चन्द्र घाट पर लगभग ३२ हजार शव जलाये जाते हैं। इन्हें जलाने मे लगभग १५ हजार टन लकडी का प्रयोग किया जाता है। पर्यावरण परिषद के अध्यक्ष डॉ० ब्रह्मदत्त के अनुसार अनुमान है कि हर वर्ष करीब २०० टन अधजले मास और १५ सौ टन राख गगा की गोद मे समा जाते हैं। हजारो लावारिस मानव शवो एव मृत पशु पक्षियो को भी गगा की शरण मिलती है। इस प्रदूषण के कारण इन दोनो घाटो के आसपास पानी का तापमान २ से ३ डिग्री सेल्सियस अधिक रहता है तथा पानी मे आक्सीजन की मात्रा भी लगभग ७५ प्रतिशत कम हो गयी है। नगर का गन्दा विषाक्त पानी लगभग ४ हजार गैलन प्रति मिनट की गति से गगा मे गिरता है। चदासी का भी वाराणसी मे गगा के जल प्रदूषण के लिए काफी ।

वाराणसी मे तो दशाश्वमेघघाट पर 'गगा का जल पीने के लिए नहीं है' की सूचना अकित कर दी गयी है।



मणिकर्णिका घाट पर शव जला कर उसे गगा मे बहा दिया जाता है

गगा के पानी की विषाक्तता के लिए चूहो पर प्रयोग किया गया है। जिन चूहो को गगा का अशुद्ध पानी लगातार सेवन कराया गया उनकी १० वी पीढी के बच्चो की पूंछ, आंख तथा अन्य अगो मे विकृतियां पायी गयी।

यमुना मे सर्वाधिक प्रदूषण वृन्दावन, मथुरा, आगरा और इटावा जिलो मे पाया गया है। मथुरा रिफाइनरी के व्यर्थ पदार्थ के कारण आगरा के ताजमहल को भीषण खतरा पैदा हो गया है।

दिल्ली मे डी० डी० टी० बनाने के कारखानो के व्यर्थ पदार्थ नजफगढ नाले से होकर यमुना मे गिरते हैं और उसके जल को दूषित कर देते हैं। ये तेजाबी व्यर्थ पदार्थ जिनमे विषैली डी० डी० टी०

मौजूद रहती है अपना चिरकारी प्रभाव यमुना के जल मे छोड़ती हैं, जिससे मछलियाँ पूर्णतया विकसित नही हो पाती ।

उत्तर प्रदेश मे ही मिर्जापुर के पास रिहन्द बाँध पर रेणुकूट में स्थित मनोडिया केमिकल इण्डस्ट्रीज के कारण वहाँ के पानी में मुक्त क्लोरीन की मात्रा ६२ पी० पी० एम० (दस लाख भाग) हो जाती है । जल मे आक्सीजन की कमी के कारण दूर-दूर तक मछली पनप नही पाती ।

उत्तर प्रदेश मे नदियो के पानी को विषाक्त बनाने वाले २६० उद्योग हैं । पिछले दो वर्षों के दौरान राज्य सरकार ने १५० उद्योगो को शुद्धीकरण सयत्र लगाने का आदेश दिया है ।

जल प्रदूषण की रफ्तार यदि ऐसे ही बढती रही तो आगामी एक दशक मे हम पानी के अभाव मे दम तोड देंगे । लेकिन इस चुनौती का सामना करने के लिए हमारी सरकार ने युद्ध स्तर पर कार्यक्रम शुरू किया है । गगा प्राधिकरण बोर्ड की स्थापना इसका प्रमुख उदाहरण है । हरिद्वार से लेकर पटना तक गगा की सफाई का काम तीव्र गति से हो रहा है । अनेक औद्योगिक प्रतिष्ठानो को गगा में प्रदूषित जल मिलाने से रोकने के निर्देश दिये गये हैं । इतना ही नही नालो को गगा मे मिलाने से रोक दिया गया है । पानी को स्वच्छ, निर्मल बनाने के लिए वृहद योजना बनी है । वाराणसी, इलाहाबाद मे भी जल प्रदूषण रोकने का काम शुरू हो गया है ।

● ● ●

जल प्रदूषण रोकने की तैयारी

जल प्रदूषण की जाँच तथा उसको प्रदूषित होने से बचाने के लिए सरकार द्वारा केन्द्रीय जल प्रदूषण रोकथाम तथा नियन्त्रण बोर्ड का गठन किया गया है। बोर्ड तीन चरणों में जल प्रदूषण का अध्ययन करेगा। योजना के पहले चरण में ४० प्रदूषण जाँच केन्द्र कार्य कर रहे हैं, दूसरे चरण में ८० केन्द्र मुख्य रूप से गंगा यमुना के दोआबा में तथा केन्द्र शासित प्रदेशों में बहने वाली नदियों का अध्ययन कर रहे हैं। तीसरे चरण में १२० अध्ययन केन्द्र स्थापित किये जायेंगे।

भारत सरकार ने गंगा जल प्रदूषण की रोकथाम के लिए ७वीं पंचवर्षीय योजना में १५ करोड़ रुपये का प्रविधान किया है। प्रधान मंत्री श्री राजीव गांधी ने ५ जनवरी ८५ को राष्ट्र की जनता को दिये गये अपने सन्देश में कहा था कि गंगा जल प्रदूषण को नियन्त्रित करने के लिए शीघ्र ही राष्ट्रीय गंगा विकास प्राधिकरण की स्थापना की जायेगी। सम्प्रति प्राधिकरण की स्थापना भी अब हो गयी है तथा गंगा को पवित्र करने का काम शुरू हो गया है।

वैज्ञानिकों का सुझाव यह भी है कि गंगा के तीर्थ स्थलों में मेले के दौरान क्लोरीन के प्रवाहित किये जाने से उसके प्रदूषण को नियन्त्रित किया जा सकता है। जल प्रदूषण पर रोकथाम करने के लिए विदेशों में कठोर कानून बनाये गये हैं। सोवियत संघ द्वारा सन् १९७४ में हानिकारक पदार्थों से सागर के प्रदूषण को बचाने के लिए नियम बनाया गया है। हंगरी में भी ३१ प्रकार के प्रदूषकों की मात्रा पर हर्जाना निर्धारित किया गया है।

वैज्ञानिक परीक्षणो के दौरान डी० डी० टी० को बेहद खतरनाक कीटनाशक पाया गया है। बम्बई मे दूध के रासायनिक परीक्षण के दौरान उसमे ६ ६ पार्ट्स पर मिलियन (पी० पी० एम०) मात्रा डी० डी० टी० की पायी गयी। यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना जरूरी है कि एक स्वस्थ मनुष्य सिर्फ ०१ पी०पी० एम० डी० डी०टी० की मात्रा ही बर्दाश्त कर सकता है।

सर्वेक्षणो तथा परीक्षणो से यह भी पता चला है कि एक भारतीय के भोजन मे औसत रूप से ०२६ मिलीग्राम डी० डी० टी० की मात्रा उपस्थित रहती है।

ईरान तथा ग्वाटेमाला मे तो महिलाओ के स्तनो के दूध मे भी डी० डी० टी० की मात्रा पायी गयी।

वैज्ञानिको का कहना है कि हर स्तर पर डी० डी० टी० का छिड़काव यदि बद न किया गया तो मनुष्य के स्वास्थ्य पर इसका प्रतिकूल असर उनकी जनन शक्ति पर भी हावी हो सकता है। वैज्ञानिको ने यह भी कहा है कि डी० डी० टी० के इसी तरह प्रयोग यदि जारी रहे तो अगली शताब्दी के मध्य तक उड़ने वाले पक्षियो की सख्या मे २५ प्रतिशत की कमी हो जायेगी।

जल प्रदूषण से प्रतिवर्ष उत्पादन म लगभग ४ अरब रुपये की हानि कारखानो मे होती है। यह हानि ७५ मिलियन कार्य दिवसों की हानि के फलस्वरूप आँकी गयी है जो जल प्रदूषण से श्रमिको की बीमारी की वजह से होती है।

भारत सरकार पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाने के लिए पिछले तीन दशको से सतत प्रयत्नशील है। अप्रैल १९८१ मे पर्यावरण योजना की राष्ट्रीय समिति (एन० सी० ई० पी०) की स्थापना की गयी तथा उसकी रिपोर्ट पर सरकार समुचित ध्यान दे रही है। गगा को प्रदूषण मुक्त करने के लिए गगा प्राधिकरण की स्थापना की गयी

है। इस कार्यक्रम के तहत हरिद्वार, पटना तथा वाराणसी मे गंगा प्रदूषण की रोकथाम शुरू कर दी गयी है।

राजस्थान के जैसलमेर तथा बाड़मेर जिले में शीघ्र ही राष्ट्रीय मरु उद्यान की स्थापना की जायेगी। इससे थार के रेगिस्तान में लुप्त हो रहे वन्य जीवों को बचाया जा सकेगा। राजस्थान सरकार रेगिस्तान के फैलाव को रोकने के लिए वृहद वृक्षारोपण कार्यक्रम चला रही है। मरुभूमि को 'ग्रीनलैण्ड' में परिवर्तित करने के लिए वहाँ एकेसिया तथा यूफोरबिया नामक जातियों के पौधे रोपे जा रहे हैं।

सरकार द्वारा बनायी गयी राष्ट्रीय वन नीति १९५२ के अनुसार भूमि का ३३·३ प्रतिशत हिस्सा वनों से परिपूर्ण होना चाहिए। इस समय भारत में २२·८ प्रतिशत भाग ही वनाच्छादित है। सरकार ने वनों का प्रसार करने के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम लागू किया है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर १९४८ में इंटरनेशनल यूनियन फार दि कंजरवेशन आफ नेचर एण्ड नेचुरल रिसोर्सेज (आई० यू० सी० एन०) नामक संस्था का गठन किया गया। इस संस्था का उद्देश्य जैविक साधनों के बचाव, उसकी वृद्धि करना तथा वातावरण विषयक राय देना है। इस संस्था मे लगभग ४६० सदस्य हैं तथा एक हजार विशेषज्ञ विभिन्न मसलो पर अध्ययन कर रहे हैं।

यूनाइटेड नेशन्स एनवायरमेंट प्रोग्राम (यू० एन० ई० पी०) अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण समस्याओं को हल कराने का काम करता है।

१९६१ मे वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड की स्थापना स्विटजरलैण्ड मे की गयी। इसका उद्देश्य प्राकृतिक वातावरण तथा जीवधारियों की उचित संरक्षा करना है। विश्वस्तर पर वन्य जीवो की सुरक्षा के लिए आर्थिक सहायता भी यह संस्था प्रदान करती है।

भारत में कई संस्थाएँ पर्यावरण पर अध्ययन कर रही है। इनमे

नेशनल एकेडमी आफ साइंसेज इंडिया, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा, म० प्र०, पर्यावरण कक्ष, नई दिल्ली, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान तथा स्वच्छ पर्यावरण संस्था, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, जे० एन० यू० दिल्ली, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय राजकोट, तथा मदुरै विश्वविद्यालय प्रमुख हैं।

इसके अतिरिक्त भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान कांग्रेस तथा इण्डियन नेशनल साइंस अकादमी भी इस दिशा में संगोष्ठियों के आयोजन के माध्यम से सक्रिय योगदान दे रहे हैं।

इलाहाबाद से प्रकाशित 'विज्ञान' तथा 'विज्ञान भारती' तथा 'विज्ञान वैचारिकी' पत्रिकाओं ने भी प्रदूषण के बारे में कई अंक निकाल कर लोगों को इसकी भयावहता का अनुमान कराया है।

हिन्दी दैनिकों, साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं तथा मासिक पत्रिकाओं द्वारा भी इस दिशा में सराहनीय कार्य किया जा रहा है। भारतीय पर्यावरण वैज्ञानिकों में वाराणसी के प्रो० रामदेव मिश्र तथा इलाहाबाद के प्रो० उमाशंकर श्रीवास्तव व श्री युद्धवीर चड्ढा का नाम उल्लेखनीय है जो पर्यावरण प्रदूषण के अध्ययन में रत हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा भी हर वर्ष संगम तट पर जल प्रदूषण से संबंधित जानकारी के लिए शिविर का आयोजन किया जाता है।

आवश्यकता इस बात की है कि पर्यावरण प्रदूषण की जानकारी हर स्तर पर समाज के हर वर्ग को कराई जाय तथा उन्हें इस बात के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए कि पर्यावरण को शुद्ध बनाये रखने में ही सम्पूर्ण सृष्टि का कल्याण है। इस बात का भी प्रयास होना चाहिए कि प्रकृति के अंधाधुंध दोहन से पैदा हो रहा असंतुलन रोका जा सके ताकि हमारी प्राकृतिक सम्पदा जो पर्यावरण को दूषित होने से बचाती है और अधिक नष्ट न हो सके।

● ● ●

एक नजर इधर भी

अर्जेन्टीना मे १६७७ ७८ मे सम्पन्न हुए सयुक्त राज्य जन-सम्मेलन मे यह फैसला लिया गया था कि १६८१ से १६६० के दशक को अतर्राष्ट्रीय जल आपूर्ति एव स्वच्छता दशक के रूप मे मनाया जायेगा।

सयुक्त राष्ट्र से सम्बद्ध विभिन्न एजेन्सियो ने १६६० तक विकासशील देशो की लगभग २ अरब जनसंख्या को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराने का कार्यक्रम तैयार किया है। हमारा देश भी इस कार्य मे कही से पीछे नही है। केन्द्रीय गगा प्राधिकरण की स्थापना इसी की एक कड़ी है। ५ वर्षीय इस योजना के पूरा होने पर शायद यह सुनिश्चित हो जायेगा कि जीवन की सजीवनी अमृतधारा गगा अब कभी भी प्रदूषण की शिकार नही होगी।

लेकिन अपनी अमूल्य धरोहर इस भागीरथी को हम तब तक नही बचा सकेंगे जब तक स्वय इसकी रक्षा के प्रति जागरूक न होगे।

प्रदूषण पर सुप्रीम कोर्ट की निगाह

पर्यावरण की दिन ब दिन बढती समस्या पर उच्चतम न्यायालय ने भी चिंता व्यक्त की है। इस न्यायालय ने सुझाव दिया है कि पारिस्थितिकी विनाश से सम्बन्धित मामलो को निपटाने के लिए क्षेत्रीय आधार पर पर्यावरण न्यायालयो की स्थापना की जानी चाहिए। सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि न्यायालयो मे निर्णय के लिए एक न्यायाधीश तथा दो विशेषज्ञ होने चाहिए। साथ ही पर्यावरण न्यायालयो के निर्णयो पर सुप्रीम कोर्ट मे अपील कर सकने का अधिकार भी होना चाहिए।

सुप्रीम कोर्ट ने देश भर के खतरनाक उद्योगो पर नजर रखने के लिए एक उच्चाधिकार प्राप्त प्राधिकरण के गठन का भी सुझाव दिया है। इस प्राधिकरण का गठन केन्द्रीय जल प्रदूषण निवारण व नियत्रण बोर्ड की सलाह पर किये जाने की बात कही गयी है।

मोटर के धुएँ का नियत्रण

दिल्ली तथा दूसरे महानगरो मे धुएँ तथा अन्य प्रदूषण के व्यापक सर्वेक्षण के बाद सरकार ने मोटर के धुएं को नियत्रित करने के लिए मोटर वाहन कानून मे जरूरी प्रावधान करने का फैसला किया है। सरकार ने सभी सम्बन्धित विभागो तथा राज्य सरकारो से पर्यावरण प्रदूषण स्वीकार्य स्तर तक सीमित रखने के लिए ठोस कदम उठाने का निर्देश दिया है।

वायु प्रदूषण रोकने के लिए मोटर वाहनो से निकलने वाले धुएँ की मात्रा के मानक तैयार किये जायेंगे।

"शोर जहरीले रसायन से ज्यादा खतरनाक

देश के महानगरो मे पिछले बीस वर्ष मे शोर आठ गुना बढ गया है। शोर के बारे मे अखिल भारतीय चिकित्सा सस्थान और केन्द्र सरकार के पर्यावरण विभाग ने सर्वेक्षण किया है। लखनऊ के इन्डिस्ट्रियल टोक्सीकालजी रिसर्च सेंटर के सर्वेक्षण के अनुसार जिन स्थानो पर लॉटरी के टिकट बेचे जाते हैं वहाँ हद दर्जे का शोर होता है। एक अन्य सर्वेक्षण के अनुसार मोची व फल विक्रेताओ को सबसे ज्यादा आवाज के कारण सुनने सम्बन्धी तकलीफें होती हैं। इस वर्ग के ४० प्रतिशत लोगो के कानो में घटियाँ बजने जैसी बीमारी होती है।

भारत को छोड कर करीब अन्य सभी देशो मे लाउडस्पीकरो पर या तो पाबदी है या उनके चलने पर नियत्रण है। जाने माने

मनःचिकित्सक एडवर्ड सी० ह्यूज के अनुसार निरंतर तेज शोर-शराबों से कई मामलों में दिमागी बीमारियां हो सकती हैं।

ब्रिटेन में तो शोर के कारण श्रवण सम्बन्धी समस्या के लिए कारीगर जुर्माना तक ठोंक देते हैं।

गैस के चूल्हे से प्रदूषण

खाना बनाने की गैस को भी अब वैज्ञानिक प्रदूषण का एक स्रोत मान रहे हैं। उनकी राय है कि गैस से नाइट्रोजन डाइ आक्साइड निकलती है। उच्च ताप पर जलने के कारण कार्बन डाई आक्साइड से सांस लेने में तकलीफ़ होती है।

१९८० में अमेरिका के ८ हजार बच्चों के ऊपर किये गए एक अध्ययन से पता चला है कि गैस कुकर का प्रयोग होने वाले घरों के बच्चों में सांस की बीमारी हो जाती है।

घरों के अंदर पेंट तथा अन्य सफाई पाउडर से भी प्रदूषण होता है।

धुएं से बचने के लिए मुखौटे

ब्रिटेन के परिवहन विभाग ने एक ऐसे मुखौटे की खोज की है जिसे पहन लेने से आग लग जाने की स्थिति में विमान के यात्रियों पर जहरीली गैस का प्रभाव नहीं पड़ेगा।

इस मुखौटे का आविष्कारक माइकेल डीला पेना है। उन्होंने संसार के कई हिस्सों में इस प्रकार के एक लाख मुखौटे बेचे हैं।

उनके अनुसार मैनचेस्टर हवाई अड्डे पर हुई विमान दुर्घटना के परिणामों से यह पता चला था कि विमान में आग के कारण जहरीली गैस निकली। इस जहरीली गैस की वजह से ५५ लोगों की मौत हुई थी।

सिगरेट : प्रदूषण के साथ कैंसर भी

धूम्रपान की वजह से पर्यावरण तो प्रदूषित होता ही है, पीने वाले कैंसर के शिकार भी हो जाते हैं। वाशिंगटन के वर्ल्ड वाच संस्थान के

अनुसार दुनिया भर के सिगरेट के तलबगारो ने अगर अपना शौक कम नहीं किया तो २००० ई० तक फेफड़े के कैंसर से मरने वालों की संख्या ५० प्रतिशत बढ़ जायेगी।

संस्थान की रिपोर्ट के अनुसार चीन मे २० करोड लोग हर साल २१० अरब सिगरेट फूंक डालते हैं।

सर्वेक्षण के अनुसार, दुनिया भर मे कम से कम ३० लाख शिशु हर वर्ष अपनी माताओ की धूम्रपान की आदत के कारण जानलेवा रसायनो के जाल मे फँस जाते हैं।

सिर्फ धूम्रपान करने वाला व्यक्ति ही कैंसर का शिकार हो सकता है, ऐसा नहीं है। सिगरेट के धुएँ की वजह से आस-पास के लोग भी कैंसर के शिकार हो जाते हैं।

अमेरिका की स्वास्थ्य सेवाओ को सिगरेट से होने वाले रोगों की रोकथाम के लिए १२ से लेकर ३५ अरब डालर तक खर्च करना पड़ता है।

काले कोहरे का अध्ययन

भारतीय मौसम विज्ञान संस्थान दिल्ली प्रशासन के विज्ञान तथा टैक्नालोजी विभाग के अनुरोध पर काले कोहरे के बारे मे अध्ययन कर रहा है। दिल्ली मे सर्दियो मे कोहरा अक्सर धुएँ की मौजूदगी के कारण काले कोहरे का रूप ले लेता है जिससे फेफड़ तथा गले पर प्रतिकूल असर पड़ता है।

यह भी समझा जाता है कि इस कोहरे मे कार्बन डाई आक्साइड जैसे प्रदूषक तत्व मौजूद रहते हैं। ये सूर्य की किरणो को प्रभावित करते हैं।

गगा सफाई के लिए उठाये गये कदम

गगा को प्रदूषण मुक्त करने के लिए स्व० प्रधान मंत्री श्रीमती गाँधी ने पहली बार एक योजना बनाई थी—गगा एक्शन प्लान।

प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने इस योजना को कार्यान्वित किया तथा फरवरी १९८५ में दस सदस्यीय 'सेन्ट्रल गंगा अथारिटी' समिति का गठन किया। इस योजना के लिए २५० करोड़ रुपये मंजूर किये गये जिनमे प्रथम वर्ष ३० करोड़ रुपया खर्च किया गया। योजना



सार्वजनिक स्थलो पर मृत पशुओं की वजह से फैलती गदगी।

में सीवेजों की सफाई, मरम्मत, पशुओं तथा मनुष्यों द्वारा फैलाए जाने वाले कूडे-कचरे के रखरखाव का बन्दोबस्त, जहाँ सीवर नही है वहाँ उनको डालना और कारखानो के पेस्टिसाइड्स तथा इन्सेक्टि-साइड्स को कृषि के लिए उपयोगी बनाने का प्रावधान है।

• • •